तोड़ दो बंधन

[शिक्षाप्रद मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक

रमेशचन्द्र प्रेम

प्रकाशक

आदर्श पुस्तक मन्दिर

चौक, इलाहाबाद

प्रकाशक
पं० बनवारी तिवारी
आदर्श पुस्तक मन्दिर
चौक, इलाहाबाद

मूल्य २॥)

मुद्रक
माधो प्रिंटिङ्ग वर्क्स,
बैरहना, इलाहाबाद ।

समर्पण

जो सदा मुझे प्रेरणा करते रहे, जिनके आधार
पर मेरे इन पात्रों का निर्माण हुआ—पीड़ा
को अपना कर जिन्होंने उससे प्यार
करना सीखा उनके ही चरण
कमलों में यह तुच्छ भेंट
सस्नेह समर्पित ।

रमेश

प्रेमोपहार

१

सूर्य की अलसाई-सी अन्तिम किरण रजनी के स्नेहमयी आंचल में छिपकर विश्राम की स्वास भरने लगीं और नीलाकाश के तारक-रूपी नयनों से वेदना के दो अश्रु ओस-बिन्दु बनकर टपक पड़े, टप-टप। क्षितिज के धूमिल पटपर एक तारा उगकर धीमे धीमे टिमटिमाने लगा। सनसन करती वायु दूर देश से किसी 'अज्ञात' का मुग्धकारी संदेश लाकर चुपचाप हृदय में भरने लगी। नीरेन के हृदय की परिपाटी पर अतीत एक धुंधली-सी स्मृति बनकर रह गया, जाग्रत रहा केवल वर्तमान और उसके पग अनजाने में ही एक सूनी-सी पगडण्डी पर बढ़ चले अज्ञात पथपर।

आज उसके समस्त रिक्त स्थानों में यह कैसी चिर-व्यापी वेदना व्याप्त गई है, कि निकलने का नाम ही नहीं लेती। यह विश्व कितना जटिल है, कितना विषम, यही एक बात मानों बार-बार उसके हृदय में समा जाना चाहती है। यहाँ मनुष्य सदैव अपने अर्थ के लिये जीना चाहता है, अपने

स्वार्थ के लिये जीना चाहता है और अपना एक अलग व्यक्तित्व बनाये रखने के लिये समाज में एक होड़ सी लग जाती है। जो दुखी हैं उनको कौन अधिक से अधिक दबा दे, उन्हें दबाकर कौन अधिक से अधिक उनपर अपना महत्व स्थापित करले। आज का मानव आजकी दग्ध मानवता की ओर से तो आखें बन्दकर मुँह फेर लेता है। वह स्वयं के लिये जीना चाहता है। स्वयं के लिये ही अपने समस्त कार्य करना चाहता है। उसमें एक दम्भ है, अभिमान है 'स्वयं' का, जो सदा दुखियों की ओर से आखें बन्दकर धीमे से मुस्कुरा देता है, उपहास की हँसी और मानों कहने लगता है, हमारा अपना एक अलग व्यक्तित्व है तुमसे बहुत दूर, बहुत ऊँचा, प्रयत्न करने पर भी जिसे छू नहीं सकोगे ! आदि-काल से जिसे पाने का तुम विफल प्रयत्न करते आ रहे हो। जिसे पाने के उन्माद में तुमने बार-बार ठोकर खाई है और प्रतारणा से तिलमिला उठे हो

नीरेन को आज लग रहा है मानों यह विश्व मिथ्या है, सृष्टि मिथ्या है ! उस छलनामयी परम परमात्मा ने इस 'स्वयं' की कठोर जंजीरों से हमें इस प्रकार जकड़कर बाँध दिया है कि हम पासपास रहते हुये भी कितने दूर हैं।

आज के युग का अधिकांश विश्व जब अभाव तथा बर्बरता की कठोर हथकड़ियों से जकड़ा हुआ, शोषण के भारी भरकम पावों के तले कुचला जा रहा है, तब मुट्ठीभर व्यक्ति विश्व-भर का उल्लास और वैभव समेटे भोग-विलास में लिप्त है। लोहे की कठोर दीवारें उन्होंने अपने चहुँओर खड़ी कर रक्खी हैं, जिन्हें देखकर दीन-दलितों की आहें कितनी ही बार उनके हृदय तक पहुँचने का विफल प्रयास कर चुकी हैं। आज कितने ही करुणा चित्र आकर उसके सामने खड़े हो

जाते हैं। एक बारगी वह चौंक उठता है, अरे, यह सब क्या है, कितना करुण, कितना भयङ्कर ! चित्र आते हैं, वह देखता है नन्हें-नन्हें कोमल बच्चों को एक रोटी के टुकड़े के लिये तड़प-तड़प कर प्राण देते हुये। नारी को एक मुट्ठी अन्न के लिये अपनी लाज बेचते हुये। ठण्ड से सिकुड़ते हुये दग्ध मानव को शोषण की चक्की में पिसते हुये। जिनके पास तन ढ़कने को कपड़े नहीं, दो मुट्ठी अन्न नहीं, दवा को पैसे नहीं। नन्हें-नन्हें बच्चों को अपने पेट की क्षुधा शान्त करने के लिये, रोटी का एक ग्रास प्राप्त करने के लिये स्वानों से लड़ना पड़ता है ? जो उनके काट लेने पर फफक-फफक कर रो उठते हैं ! पिताओं को, माताओं को, अपने पुत्रों पर आहार करते वह देखता है और देखता है उनकी सूखी हड्डियों पर सहस्त्रों पक्षी कैसे आकर टूट पड़ते हैं।

फिर और चित्र आते हैं, उससे भी करुण, उससे भी बीभत्स, अवाक वह देखता जाता है। दो आने में माता अपने पुत्र को बेच रही है, पुरुष नारी को बेच रहा है, नारी स्वयं अपनी लाज बेच रही है। क्योंकि वह गरीब है, विश्व भर की प्रतारणा पाना ही उनका अधिकार है। करुणा और क्षोभ से उसका हृदय भर जाता है, लज्जा से उसके नयन नत हो जाते हैं। वह देखता है सहस्त्रों नर-नारी निविड़ अन्धकार में समाये जा रहे हैं और यह विकराल काल अपने अथाह अन्धकारमय आंचल में आतुर हो उन्हें समेटे लिये जा रहा है।

नीरेन व्याकुल हो उठता है ! यह कैसा विधान है, क्यों होता है ऐसा ! बच्चा एक उत्पन्न होता है पूँजीपतियों के घर, दूसरा इन भोले भाले दरिद्र लोगों के बीच ! दोनों में कहीं कोई अन्तर दीख नहीं पड़ता। परन्तु बड़ा होने पर एक धन

जाता है स्वामी और दूसरा सेवक ! क्या है यह सब, विपति की कैसी क्रूरता है यह ।

इन मुट्ठीभर पूँजीपतियों ने अपना सुनहरा जाल बिछाकर कैसे समस्त विश्व को अपने आधीन कर लिया है । इन दीनहीन दरिद्र लोगों के विकास और बड़प्पन की बात ही क्या, उनका अस्तित्व भी इन थोड़े से पूँजीपतियों के अस्तित्व में विलीन हो जाता है । वह हँसते हैं, रोते हैं पूँजीपतियों के लिये, उनका प्रत्येक कार्य निर्धारित है पूँजीपतियों की इच्छा पर । कैसा विचित्र व्यापार है, पूँजीपति उन्हें ठुकराकर पांवों तले कुचल डालना चाहते हैं, दमन की चक्की में पीस देना चाहते हैं, परन्तु फिर भी उठकर वह उनके पांव चूम लेते हैं, जाने कैसी भावना इसके पीछे छिपी है, आत्म समर्पण की, या फिर उदर-पूर्ति की परन्तु जो भी हो, है यह बड़ा विचित्र ।

अभी बंगाल में कितने नर-नारी भूख से तड़प-तड़प कर मर गये । कितने पूँजीपतियों ने उनकी दरिद्रता से परिहास किया । रोटी के दो टुकड़े फेंककर इन निरुपाय, आश्रयहीन प्राणीयों को अपने समीप खींच लिया और उन्हें अपने आमोद प्रमोद की सामग्री बना अपनी वासना की तृप्ति कर, पांवों से कुचल कैसे बाहर फेंक दिया ! और उनका करुण क्रंदन सुन कैसे धीमे से मुस्कराकर अपनी विजय पर गर्व करते चल दिये, मानों यही तो है उनकी उच्चता, दलितों को पांवों से रौंद कर ही तो वह बड़े हैं । ऊँचे हैं, पद-दलित न करें तो उनका बड़प्पन कैसा, उनका महत्व ही क्या । आज अमानुषिकता से मानवता दब गई, अभिषाप वरदानों से मधुर हो उठे ।

एक सीमा ऐसी भी होती है जब मनुष्य दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर सुखी होता है । जब कोई अश्रु भरे नयन लिये उसके सामने आ खड़ा होता है तो बजाय उसे पुचकार कर आँचल

में छिपा लेने के उसकी भृत्सना करने में ही उसे सुख मिलता है मानों पत्थर पत्थर रह जाना चाहता है, मोम बनकर पिघलना नहीं चाहता। यही रूप है इन पूँजीपतियों का, यही है इनका बड़प्पन, इसी के बल पर यह समाज में अपना सर ऊँचा कर, अपना एक विशेष स्थान बनाकर चल सकते हैं।

यदि इन पूँजीपतियों का सारा धन बटोर कर विश्व में बराबर बराबर बाँट दिया जाय और अपने विकाश तथा बुद्धि के बलपर चला जाय तो पलभर में भी उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति का भान हो जायगा। तब उन्हें अनुभव होगा कि कैसे पंगु वह रह जाते हैं। पूँजी तो पीढ़ीदर पीढ़ी एक ही मनुष्य पर, एक ही कुटुम्ब पर चली आ रही है। उसके खो जाने का भय नहीं, उसके चले जाने की आशङ्का नहीं, उसी के बलपर वह अपनी सत्ता बनाये रखना चाहता है और फिर अपने ही ढङ्ग को लेकर, अपनी ही सुविधाओं को दृष्टि में रखकर समाज का निर्माण करना चाहता है। परन्तु ऐसा समाज जो थोड़े से व्यक्तियों की स्वार्थ-पूर्ति के लिये बना हो, क्या कभी शक्तिशाली हो सकेगा। विश्व में अपना कोई महत्व बनाकर क्या कभी वह चल सकेगा। वह तो पल पल में कच्ची भीत की भांति टूट फूट कर बिखर जाना चाहेगा। यह तो मजदूरों का देश है, उन्हीं का राज्य यहाँ चाहिये। उन्हीं की महत्ता यहाँ चाहिये। परन्तु कैसी दशा है उन मजदूरों की, जिन पर देश का भार है, जो सत्यता के वास्तविक प्रतीक हैं। एक बार कल्पना भर कर लेने से हृदय कांप उठता है। अन्तर से कोई 'हा, हा' कर चिल्लाने लगता है, आँसू, प्रतारणा, पीड़ा और उसके ताप से पलकों तक आते आते अश्रु वाष्प बनकर उड़ जाते हैं। आज का मानव जल रहा है और चुपचाप जलता जाना चाहता है। उनमें विद्रोह की भावना जगानी होगी,

'स्वयं' का अभिमान जगाना होगा। तभी मनुष्य मनुष्य बन सकेगा। एक चिनगारी है जो धीमे-धीमे सुलग रही है, एक दिन लपटें बनकर सारे विश्व को दाह ग्रस्त कर लेगी। बस एक बार उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान कराना होगा, तभी वह अपना महत्व समझ सकेंगें।

नीरेन को आज एक गर्व सा अनुभव होता है। अनन्त पीड़ा के पीछे से हर्ष की एक धीमी-सी रेखा बार-बार हृदय में चमक उठती है। बंगाल पीड़ितों के लिये एक भाषण ने आज कितना प्रभाव लोगों पर डाला है। तनिक सी देर में ही कितना रुपया उसने उन लोगों के लिये बटोर लिया है। आज उसे लगता है मानों अपने ही भीतर वह कुछ पूर्ण सा हो चला है।

विचार मग्न नीरेन नगर के कोलाहल से जाने कितनी दूर निकल आया कि पीछे से किसी ने पुकारा।

नीरेन रुक गया, देखा ठाकुर आ रहा है।

पास आने पर पूँछा नीरेन ने, 'कहो ठाकुर, क्या बात है।'

विक्षिप्त-से स्वर में कह चला ठाकुर, 'बड़ा अनर्थ हो गया भैया। माधव ने सब लोगों की एक सभा की है। कहता है कल से मिल में हड़ताल करेंगें। मैनेजर का अत्याचार अब सहा नहीं जाता। मैंने बहुतेरा समझाया, अभी समय नहीं आया। हड़ताल से कोई लाभ न होगा, परन्तु कोई भी सुनता नही, सबों में एक प्रेरणा-सी उसने भर दी है, अब तुम्हीं चलकर समझाओ भैया नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।'

धीमे से नीरेन ने कह दिया, 'अच्छा चलो।'

ठाकुर प्रसन्नता से उछल पड़ा, 'तुम्हारा ईश्वर भला करे भैया।'

× × ×

छोटी सी चौपाल में एकत्रित हैं सहस्रों व्यक्ति शान्ति के वातावरण में जैसे एक शोर समाकर रह गया है। तभी एक ओर से स्वर उठा, 'हड़ताल होगी, अवश्य होगी, अत्याचार अब सहन नहीं होता।' तो कोई चिल्ला उठता, 'अरे हड़ताल करोगे, क्या भूखे मरना है पेट भरने को मुट्ठी भर अन्न नहीं और चले हैं हड़ताल करने, काम नहीं करोगे तो खाओगे क्या!'

चहुँ ओर छोटी-छोटी पाँच छै लालटेनें अपना अलग व्यक्तित्व बनाये जगमगा रही हैं। उनके धीमे प्रकाश में एक समा-सा बँध गया है और रात्रि के सन्नाटे में वह शोर कुछ ऊँचा उठकर आकाश के धूमिल अंधियारे में समाया जा रहा है!

नीरेन को सामने खड़ा देख सब लोग चुप हो आतुर नेत्रों से उसकी ओर निहारने लगे। आशा और सफलता की एक लहर अचानक उनके हृदय में दौड़ गई।

नीरेन बिना भूमिका बाँधे ही कहने लगा, 'आप लोग कल ही से हड़ताल कर देना चाहते हैं, मैं भी तो सुनूँ कारण क्या है।'

रह गये सब शान्त, निस्तब्ध!

नीरेन ने फिर कहा, 'बताइये न, संकोच किस बात का है, आप लोग क्यों हड़ताल कर देना चाहते हैं।'

इस बार माधव उठ खड़ा हुआ। स्वर उसका अति विनीत हो उठा मानों आँसू अभी छलककर बिखर पड़ेंगे! वह कहने लगा, 'अब उनका अत्याचार सहन नहीं होता भैया, तुम तो जानते हो, हमारे प्रति उनका व्यवहार कितना कठोर है। और यह मैनेजर, शोषण ही मानों उसका कर्तव्य है। कभी किसी को बेगार करने को बुलवा लेता है, कभी

किसी को पिटवा देता है। किसी के इनकार करने पर उसे निकाल बाहर करता है—कहता है तुमसे मिल का काम नहीं होता। किसी का वेतन काट लेता है और अपनी जेब गर्म किया करता है। दया उसके हृदय में मानों एक परिहास की वस्तु बनकर रह जाती है। तुम्हीं बताओ नीरेन भैया, हम कहाँ तक सहन करें। हम निर्बल हैं, हममें जीवन नहीं है, क्या इसीसे जो चाहेगा हमारा शोषण करता रहेगा। सहने की भी एक सीमा होती है भैया।' स्वर उसका आर्द्र हो उठा, आँखें झुकाये वह वहीं बैठ गया।

नीरेन धीमे स्वर में कहने लगा, 'मैं सब जानता हूँ, आप लोगों की असुविधायें। कठिनाइयाँ जब एक एक कर मेरे सामने आ खड़ी होती हैं तो मैं व्यथा से काँप उठता हूँ, परन्तु चारा क्या है, अभी हम लोगों में संगठन नहीं है, पेट भरने को दो मुट्ठी अन्न नहीं है, तन ढकने को कपड़े नहीं हैं। यदि आज हम काम न करें तो हमारे जैसे सहस्रों व्यक्ति और काम पर आ जायँगे, फिर बताइये आप लोगों का क्या होगा, आपके नन्हें-नन्हें बच्चे, आपकी मातायें, बहनें, पत्नियाँ भूख से छटपटाया करेंगी। ज्वर की प्रतारणा से उनके हृदय को चीर कर चीत्कार उठेंगी, ठण्ड से उनका शरीर ऐंठ कर रह जाना चाहेगा, क्या आपको यह सब सहन हो सकेगा। क्षणिक आवेश में बिना सोचे समझे क्या इतना बड़ा कार्य कर डालना उचित होगा।' चुप होकर नीरेन उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

तभी एक ओर अली खड़ा हो गया। स्वर कुछ ऊँचा कर कहने लगा, 'परन्तु भैया, आज तो शोषण चरम सीमा तक पहुँच गया। शाम अख्तर की विधवा बहन वहाँ सामने नदी पर पानी भरने गई थी। वहीं से उस मैनेजर ने उसे

अपने आदमियों से उठवा लिया ! देखो भैया वह अपने को बड़े कहते हैं ! क्या यही उनका बड़प्पन है, ऐसी बातें सुनकर तो हम छोटे लोगों का भी मस्तिष्क लज्जा से नत होजाता है।'

नीरेन फिर कहने लगा, 'बड़े वह लोग नहीं हैं, बड़े तो आप लोग हैं। आपही लोगों के परिश्रम से तो वह बड़े हैं ! आप ही के अस्तित्व से तो उनका अस्तित्व है।' तनिक रुककर वह फिर कहने लगा, 'बस कुछ दिन और ठहर जाइये, हमें राष्ट्रियता से पहले मानवता की ओर देखना है। पीड़ित मानव की चीत्कारों का भार विश्व का हृदय अधिक दिनों तक सहन नहीं कर सकेगा। ज्वालामुखी फटेगा और समूचे संसार को वाँह ग्रस्त कर लेगा। बर्बरता, अत्याचार उसके नीचे दब जायँगे, ऊपर उभर जायेगा केवल आप लोगों का स्वर ! तब वही सत्य होगा और वही होगा शिव। परन्तु इसके लिये एक बार सारे देश के मजदूरों का संगठन करना होगा, तभी वह एक साथ मिलकर विरोध की आग भड़का सकेंगे, तभी उससे कुछ लाभ हो सकेगा। इसके लिये आवश्यकता है एकता की, छोटे छोटे दलों में बँट जाने से तो हमारी शक्तियाँ क्षीण होती जांयगी और एक दिन अवश्य हम धरातल को पहुँच जाँयगे। निराशा तथा संघर्षों को अपनाकर ही मनुष्य उन्नति के पथ पर चढ़ना सीखता है, आशा तथा सफलताओं के निरन्तर मिलते जाने पर तो वह जिस दशा में है उसी में रह जाना चाहता है। आप कुछ दिन और सहन करते जाइये, आपकी सारी कठिनाइयाँ दूर हो जांयगी। तब आपके परिश्रम का लाभ आप ही के बीच बाँटा जायगा, आप से भी पशुओं का नहीं, मनुष्यों का सा व्यवाहर किया जायगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।' नीरेन चुप हो गया।

माधव खड़ा हो गया, कहने लगा, 'तुम्हारी बात का कभी उलंघन किया है हमने, तुम्हीं तो एक ऐसे हो जो हमारे दुख-दर्द का ख्याल रखते हो, नहीं तो संसार में हमारा है ही कौन, ईश्वर भी शायद हम दरिद्रों को भूल जाता है।'

इससे पहले ही नीरेन चौपाल से बाहर हो गया था।

२

संध्या के धूमिल अंधियारे में राय साहब का अलसाया-सा सुमधुर उद्यान लाल हरी बिजली की बत्तियों से ज्योतिमय हो उठा, मानों आकाश के विशाल भाल पर सुहाग की बिन्दी की नाईं सहस्रों तारक खिल-खिल करके हँस पड़े हों, अपने सौभाग्य के गर्व में फूले से। जूही, चमेली की मनोहर सुगन्ध पवन के हिंडोले बनाये मस्ती से चहुँओर झूमने लगी। यौवन की मादकता में झूमती मधुमय बयार आंचल में स्नेह का सौरभ समेट नन्हीं-नन्हीं कोमल कलिकाओं को भीगो पलकें आतुर अधरों से पोछती हुई धीमे-धीमे उनके मधुर कपोलों पर सहस्रों व्याकुल चुम्बन अंकित कर जाने लगीं, जिनके मद से मतवाली हो झूम उठी रक्तिम कलिकायें, यौवन के मद में खोई-सी, बलखाती जैसे सरिता की चंचल लहरें। उद्यान के मध्य में लगा उस विशाल फौवारे का स्वर्णिम जल किसी स्वर्गिय अमर सङ्गीत से प्रेरित हो 'छम, छम' करके नर्तन करने लगा, मधुमय, मनहर नर्तन। और उसी मधुर संगीत के स्वरों में ताल देती हुई चम्पा की नन्हीं-नन्हीं डालियों पर

कूक उठी मतवाली कोकिल, 'पीहू, पीहू', विरह-विधुरा तरूणी सी, 'पीहू, पीहू'। शृंगार से सजी-सी अलसाई पृथ्वी खँजड़ी बजा बजा कर धीमे धीमे गा-उठी। इन सबने मिलकर एक समा सा बाँध दिया जिसका स्वर कुछ ऊँचा उठकर गगन की श्यामल अमराइयों में समाने लगा।

नीलिमा की वर्ष गाँठ के उपलक्ष में यह विशाल आयोजन। सुकोमल, नन्हीं नन्हीं मखमल सी दूरी घास पर मेज-कुर्सियों की लम्बी-लम्बी कतारें इन्द्र-धनुष के रंगों-सी बिखर कर मुस्कराने लगीं। नीलिमा चहुँओर से सहेलियों को बटोरे गुलाबी गुलाब की लम्बी लम्बी क्यारियों को लाँघती भागी भागी फिरने लगी। खिलखिल करके मुस्कराती हुई, चन्द्रमा की श्वेत ज्योत्सना सी निर्मल मुस्कान। सुकोमल गुलाब की कलियाँ तोड़कर वह सखियों पर फेंकने लगी। हर्षोन्माद हृदय के सीमित बन्धनों को तोड़ पर बह चला, क्षण-क्षण में वह चिल्लाने लगी, 'ओह, देखो यह कितनी सुन्दर है, कितनी मधुर है यह।' सखियों की बाँह पकड़े कभी वह फौव्वारे का जल उछालने लगती, कभी दूर तक फैली सुकोमल घासपर लेट जाती। हृदय में कितनी मधुमय भावनायें, कितने स्वर्णिम स्वप्न तथा कितनी सुप्त कल्पनायें आज अचानक जाग उठीं और उसी के मद में मतवाली-सी, अल्हड़-सी नीलिमा स्वयं में ही खोकर रह गई।

रायसाहब एक बार नीलिमा की ओर देखकर मुस्करा दिये। एक अतुलनीय संतोष तथा शान्ति से उनका मन भर आया। उस मातृविहीन नीलिमा को मुस्कानों में खोये देख अतीत के शैशव की एक बिसरी सी स्मृति बार-बार उनके सम्मुख आकर खड़ी होने लगी। वह नन्हीं-सी नीलू को गोद में लिये अपनी पत्नी की मृत्यू-शय्या के समीप खड़े हैं, पत्नी धीमे से,

दबे से स्वर में कह रही है, तुम्हीं पर तो मुझे विश्वास है, इसी से तो अपनी नीलू को तुम्हारे चरणों पर छोड़े जाती हूँ, उसे कष्ट न देना।'

और आज लम्बे-लम्बे बीस वर्ष व्यतीत हो गये हैं। इन बीस वर्षों की लम्बी अवधि में, कितने संघर्ष आये, कितनी ही श्रृंखलाओं ने रायसाहब को चारों ओर से जकड़ लिया, परन्तु वह चलते रहे, चलते रहे, नीलू को गोदी में लिये, पत्नी के उन आतुर नयनों की ओर निहारते हुये, उन्हीं से उन्हें प्रेरणा मिलती गई, एक नवीन जाग्रति से सदैव उनका मन भरता गया। इन बीस लम्बे लम्बे वर्षों के किसी क्षण में भी माता का अभाव नीलिमा को उन्होंने खलने नहीं दिया। उसे उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता दे डाली। किसी प्रकार का बन्धन उन्हें नीलिमा पर सहन नहीं हो सका। और उस स्नेह के आंचल में पल कर वह अल्हड़ सी बालिका इन बीस वर्षों के पश्चात् भी अल्हड़ ही बनी रही, बिलकुल बालिका सी, निर्मल, स्वच्छ बालिका सी।

आये हुए माननीय सम्मानित व्यक्तियों से रायसाहब नीलिमा का पहिचान कराने लगे। नीलिमा हाथ जोड़े खड़ी चुपचाप मुस्कराती रही। कभी वह जोर से हँस पड़ती, हँसती रहती, हँसती रहती, मधुर सी निर्मल हँसी। फिर भोजन का समय हुआ। निलिमा लोगों को आमंत्रित करती फिरने लगी, फूली सी, मद में समाई सी।

तभी कहीं से आ पहुँचा नीरेन-क्रोध से स्वर उसका काँप रहा था, आवेश में पाँव लड़खड़ा रहे थे। उसके हाथों में था एक नन्हा सा नर-कंकाल, केवल हड्डियों का ढाँचा-सा। उसे तनिक-सा ऊँचा उठा कर वह चिल्ला उठा, देखो, आज तुम्हें पूँजीपतियों का नग्न रूप दिखाने आया हूँ। यहाँ आयोजन

हो रहा है किसी की वर्षगांठ के अपलक्ष में, कोई अनन्त तक जीवित रहे इसकी शुभ कामनायें मनाई जा रही हैं। यह धनिकों के महल यहाँ सभी कुछ एकत्रित है, कितनी ही नीचता, कितना ही पतन। परन्तु इन सुसज्जित गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं के सामने किसी दीन-हीन निर्धन मजदूर का बालक अपनी माता-पिताओं की गोद में ही भूख से तड़पकर और ठन्ड से सिकुड़ कर प्राण दे देता है। और सड़क के किनारे पड़े हुये उसके शव पर चील-कौये अहार करते हैं। चिर सनेही अपने उस बालक की दशा देख कर उसके माता-पिता चुपचाप दो बूंद रक्त के आँसू बहाकर रह जाते हैं, उनके पास उसे पहनाने को कपड़े नहीं हैं, उसे जीवित रखने के साधन नहीं हैं।

आज यहां ऐसे व्यक्तियों पर व्यर्थ इतना अन्न गंवाया जा रहा है, जिन को अन्न की कोई कमी नहीं, जो जितना चाहें खरीद सकते हैं, जितना चाहें फेंक सकते हैं। जिन्हें कभी अन्न का अभाव नहीं खलता। परन्तु क्या कभी उन दीन दरीद्र मजदूरों की ओर भी आपको आँखें उठाने का अवकाश होता है, जिन्हें सप्ताह में चार दिन उपवास करना पड़ता है, जिनके कोमल बच्चे ललचाये नयनों में अश्रु भरे आप की ओर हाथ पसार देते हैं। और आप लोग ठोकर मार कर उन्हें दूर भगा देते हैं! नित्य ही तो खबरें आती हैं, सहस्रों व्यक्ति भूख से तड़पकर गलियों और सड़कों के किनारे अपने प्राण दे देते हैं। यह नग्न, हड्डियों के ढाँचे से, दुर्बल, लाठी टेककर चलते हुये युवक आप देखते हैं, अर्ध-नग्न नारी को अपने आगे हाथ पसारे करुणा की भीख माँगते आप देखते हैं। परन्तु फिर भी आपका पाषाण हृदय पिघल नहीं जाता, फिर भी

आप सहानुभूति का एक शब्द उनसे कह नहीं पाते, बदले में आप उन्हें दे पाते हैं घृणा, अतुल असहनीय घृणा !'

नीरेन दो क्षण को रुक गया ! उसका समस्त शरीर आवेश से काँप उठा। कण्ठ उसका अवरुद्ध हो गया और पलकों में नमीं आकर समाने लगी। क्षणभर रुककर वह फिर बोल उठा, '*मैं जानता हूँ आपके हृदय का क्रोध आज मुझे निगल* जाना चाहता है ! शायद जीवन का यह सत्य आज असह हो उठा है ! मैं जा रहा हूँ, परन्तु जाने से पहले एक बार आप लोगों से पूँछता हूँ कि इस प्रकार जीने का आपको क्या अधिकार है ! आज एक बार आप लोगों का नग्न रूप आपके सामने खोलकर रख जाना चाहता हूँ , जिसे आप अपने धन के बलपर सभ्यता के वस्त्र पहना अभिमान से चहुँओर विचरा करते हैं ! देखो इसे, इस नन्हें से नर-कंकाल को, इस हड्डियों के ढाँचों को, आपके इन्हीं महलों के सामने जहाँ इतना अन्य व्यर्थ गंवाया जा रहा है. इसने भूख से तड़पकर प्राण दे दिये हैं। क्या एक बार भी आपने उस ओर आँखें उठाकर देखा ! क्या दो मुट्ठी अन्न के लिये आये हुये उसके माता-पिताओं को आपने दुत्कार कर बाहर नहीं ढकेल दिया। देखो अपने मनोरञ्जन और सभ्यता का परिणाम ! परन्तु आज समय बदल रहा है, साम्राज्यवाद की दीवारें हिल रही हैं, पूँजीवाद की जड़ें खोखली पड़ गईं हैं, एक भूकम्प उठेगा, जलजला आयेगा और समस्त विश्व को बाँह ग्रस्त कर लेगा। तब एक नये समाज का निर्माण होगा जहाँ पशुता नहीं मानवता राज्य करेगी। ज्वाला निकल रही है, बस विस्फोट होने की देर है। लो इसे आज तुम्हें ही दिये जाता हूँ, इसकी हड्डियों, सूखे हुये माँस और धँसी हुई आँखों को भी नोच-नोच कर खा जाओ। मर कर भी वह तुम्हारे काम कर सकें

ती अपना सौभाग्य समझेंगे।' नीरेन आवेश में पागल बनकर, नर-कंकाल को बीच में फेंक पलभर में ही आँखों से ओझल हो गया।

सब रह गये अवाक, निस्तब्ध! किसी को एक शब्द भी बोलने का साहस न हुआ। और नीलिमा को लगा मानो विजय पताका खण्ड-खण्ड होकर गिर पड़ी हो। और विप्लव की एक भयंकर झंझा पथ की समस्त वस्तुओं को खण्ड-खण्ड कर बह गई हो। नीलिमा को लगा मानों जितने आक्षेप, जितनी लांछना नीरेन आज दे गया है वह सब उसी को लक्ष करके हुआ है। अपने समाज के इतने व्यक्तियों के बीच वह कैसी एक हास्यास्पद वस्तु की भाँति खड़ी रह गई है। आवेश से उसके पाँव काँपने लगे, घृणा में उसका मन भर आया। मानों उसका रोम-रोम चिल्लाकर कहना चाहता है, नीरेन यहाँ क्यों आया क्या अधिकार था उसे उसका इस प्रकार अपमान करने का, क्या अधिकार था उसे। लज्जा से उसका मुख लाल होकर विकृत हो उठा, साहसहीन सी विवश नीलिमा भाग चली अपने कमरे की ओर तेजी से, मानों कोई उसे देख न ले, छू न ले! एकान्त में पहुँचते ही उसके आंसू उबल पड़े, छल-छल करके! चुपचाप पलंग पर पड़ी वह छत पर शून्य की ओर अपलक निहारती रही। उसे लगा मानों कमरे की दीवारें अन्धकार में विलीन हुई जा रही हैं, घने अन्धकार में और उसके चारों ओर एक शून्य भरता आ रहा है अविचल अचंचल शून्य। उसके हृदय से कोई बार-बार पुकार कर कह उठने लगा, 'वह क्यों इतनी दुर्बल है, क्यों है इतनी हास्यास्पद।' फिर बस यही एक बात उसके मन में जाग्रत होकर रह गई और सब अन्धकार में विलीन हो गया।

३

आज सभा से लौटते समय हरीश नीरेन से कहने लगा, 'माँ तुम्हें बहुत याद करती हैं भैया। कितनी ही बार कहा, कहाँ रहता है मेरा नीरू, क्या नाराज हुआ है अपनी माँ से। इधर इन दिनों कितनी ही बार तुम्हें लेकर मुझसे झगड़ पड़ी हैं। मैंने कितना समझाया, बहुत काम है माँ, परन्तु कहीं मानती है वह, कहती थी कि माँ के आंचल के भीतर छिपकर दो घड़ी सुख की नींद सो लेने से बड़ा संसार में कोई कार्य नहीं है। इसे तू नहीं मेरा नीरू समझ सकेगा। तुम्हीं बताओ भैय्या, माँ समझेंगी नहीं, ममता मोह के इस विचित्र बन्धन में बाँध कर अपने आँचल में छिपाये रहेंगी। फिर देश का इतना कार्य जो उठा लिया है हमने अपने कंधों पर, उसे करेगा कौन और वह पूर्ण हो सकेगा कैसे। माँ की आज्ञा सुनकर तुम तो भैया संसार के समस्त कार्य छोड़ माँ के चरणों की धूलि लेने दौड़ पड़ोगे, इसी से तुमसे अब तक कह नहीं सका। परन्तु आज मां अनायास ही नाराज हो उठीं। कहने लगीं,

'तू बताता क्यों नहीं है रे, कहां है मेरा नीरू, क्या मेरे बुलाने पर भी क्षण भर को आ नहीं सकता। नहीं, मैं जानती हूँ, उससे कहा नहीं होगा तूने। अपनी मां के आदेश का उलंघन करे एसा वह नहीं है। तू तो सदा उससे रूठा रहता है! वह जो करेगा, तू तो सदा उसका प्रतिरोध ही करता रहेगा।' कहते कहते हरीश हँस पड़ा, 'देखा भैया, मां ने जानते हुये भी क्रोध में आकर तुम्हारे विषय में कैसी असत्य बात मुझसे कह डाली, तुम्हारी आज्ञा का उलघंन करने का क्या कभी साहस हुआ है मुझमें।' इसकी कल्पना से ही हरीश कितनी देर तक हँसता रहा, फिर बोला, 'मां फिर कहने लगी, यदि आज उसे नहीं लाया तो मैं कभी तुमसे नहीं बालूँगी, उससे कहना मेरे सामने ही बैठ कर खाना खाये, नहीं तो मैं भी सब कुछ छोड़, उपवास करके एक कोने में पड़ी रहूँगी।'

निरेन का मन आनन्द-विभोर हो उठा। उसने मन ही मन अपनी भावनाओं की श्रद्धाञ्जली उनके चरणों पर अर्पित करदी।

हरीश कुछ देर पश्चात फिर बोल उठा, 'बड़ा अनुराग होता है इस महा ममतामयी मां के प्रति, बड़ी श्रद्धा लगती है! बड़ा आनन्द है उसके प्यार भरे आंचल में, बड़ा सुख है भैया।'

दोनों आ पहुँचे मां के सामने! नोरेन ने उनकी चरण रज माथे पर लगा ली! फिर उनके समीप ही बैठ गया। मां ने आनन्द बिभोर हो उसके मस्तक पर हाथ रख जाने कितने आशीष दे डाले, फिर उलाहने के स्वर में कहने लगी, 'तू कहां रहता है रे नीरू, मां को बिलकुल भूल ही गया है क्या, कितना याद आता था तू, नित्य ही तो तेरी राह में आंखें बिछाये

बैठी रहती थी। नित्य तेरे लिये खाना बनाकर रखती थी। सोचती थी अब आयगा मेरा नीरू, अपने हाथ से खिलाऊँगी उसे। यह हरि कहता था, बहुत काम है, तुम्हारा नीरू आ नहीं सकेगा, बता तो रे ऐसा क्या काम किया करता है जो अपनी मां के पास भी आ नहीं सका! मैं तेरी बड़ी बड़ी बातें तो समझूँगी नहीं, न समझना ही चाहती हूँ, मैं ठहरी गवाँर! परन्तु अपनी माँ के पाँवों की धूलि लेने तो पल भर को आ ही सकता था न, उसकी उपेक्षा करना तू कब से सीख गया रे।' मां निरन्तर कहती गई और सब सुनते गये, मूढ़ निस्तब्ध से।

सुन कर नीरेन धीमे-धीमे मुस्कराने लगा। अनन्त गहराईयों तक आनन्द से हृदय उसका भर आया और नयनों में दो बिन्दु अश्रु साफ साफ झलक उठे, जाने वेदना के या सुख को। वह मां के और निकट सरक आया, उनके पाँव छूकर कहने लगा 'कहना अनुचित होगा माँ, परन्तु तुम्हारी पग-धूलि लेने से मैं एक बार चिता से भी उठकर दौड़ आऊँगा।''

तभी हँस कर कहने लगा हरीश, यह भैया की अपनी बात है। उसमें मैं बाधा नहीं दूँगा। परन्तु इतना जानता हूँ कि माँ की पग-धूलि लेने से भी बड़ा संसार में एक कार्य है, जिसकी उपेक्षा कभी नहीं की जा सकती। वह है भारत माँ के पाँवों की धूलि ग्रहण करना। उसके सहस्रों टूट-फूट कर बिखरते हुये बच्चों को उनके पाँवों पर खड़ा करना, उनको अपने व्यक्तित्व का, अपनी शक्ति का, अपनी मानवता का ज्ञान कराना, उनके मन में शोषण के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काना, वही है वह महामंत्र, जिससे माँ को भी पाया जा सकता है और ईश्वर को भी।'

माँ सहसा क्रोध से चीख उठी, 'मैं यह उपदेश सुनना नहीं चाहती, तेरे बचपन से उन्हें सुनते सुनते थक गई हूँ, परन्तु

इतना जानती हूँ कि तू गिरेगा और गिरता जायगा, नीचे, बहुत नीचे। आज का विश्व भावुकता में बहने का नहीं कठोर सत्य को अपनाने का है।' कहते कहते उन्होंने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

नीरेन ने जाने यह सब सुना या नहीं। अतीत की एक धुधँली सी स्मृति आज कुछ उज्जवल होकर उसके सामने घुमड़ने लगी, अभी मानों कल ही की तो बात है, कालेज में उसका वह द्वितीय वर्ष था। तभी एक दिन मंच पर भाषण देते-देते नीरेन ने देखा हरीश को, उत्सुकता सा अस्त-व्यस्त युवक उत्साही-सा, होठों पर करुणा की सी मधुर हँसी और पलकों पर उमड़ते दो विन्दु अश्रु! उस दिन बड़ा भला लगा नीरेन को यह युवक और अनजाने में ही उमड़ आया एक मोह उसके प्रति। उसी दिन नीरेन का प्रथम बार परिचय हुआ हरीश से। भाषण के पश्चात हरीश आया, कहने लगा करुण होकर, अभी अभी इन दीन हीन मजदूरों के शोषण का चित्र जो आप मंच पर खींच आये हैं नीरेन बाबू, उसे एक बार अपनी आँखों से देख लेने का बड़ा लोभ होता है। वह लोग क्या हैं, कैसा है उनका जीवन, प्रयत्न करने पर भी उससे मैं सदा अज्ञात ही रह गया। मैं ऐसे संस्कारों को लेकर ऐसी सभ्यता के बीच, ऐसे लोगों में पलकर बड़ा हुआ हूँ जो इन लोगों से बिलकुल अलग हैं, बहुत दूर हैं। इसीसे मैं कभी कुछ जान नहीं पाया! उन्होंने सदैव भय दिखाकर मुझे इससे दूर ही खींच रक्खा। उनके विषय में सुनता हूँ तो बड़ा विचित्र सा लगता है, निज के प्रति एक घृणा सी उमड़ने लगती है। उन्हीं असंख्य लोगों में से मैं भी एक होकर रहना चाहता हूँ, यदि आपकी सहायता से कुछ जान सकूँ तो सचमुच मैं जी उठूँगा नीरेन बाबू।' उस दिन नीरेन ने देखा एक अथाह वेदना

का, एक अटूट करुणा का सागर इस युवक के हृदय में लहराता हुआ। कैसी सरलता से इसने अपने मन की समस्त भावनायें खोलकर नीरेन के सामने रख दी, यही सोच वह अवाक हो उसकी ओर देखने लगा।

यही थी उनकी प्रथम भेंट! फिर जाने कब वह 'नीरेन बाबू' का सम्बोधन 'भैया' में परिवर्तित हो उठा और मित्रता की एक धीमी सी रेखा भी अचानक एक दिन उनके बीच से हट गई।

तभी एक दिन हरीश कहने लगा, 'तुम्हें माँ ने बुलाया है भैया।'

नीरेन सोचने लगा! वह गरीब है, सदा से ही वह अकेला रहा है, उसका अपना एक अलग मार्ग है! धनिकों की जिस राह पर आज हरीश उसे घसीट ले जाना चाहता है बड़ी कटीली है वह राह, बड़ा भयङ्कर है वह दुष्ट पथ! उलझ जायगा वह, खो जायगा उस पथ में तो कौन हाथ पकड़कर उसे खींच लायेगा! यह पूँजीपति तो सदा से गरीबों को दीन समझते रहे हैं, घृणा करते रहे हैं! मानों गरीबी एक अभिषाप है जो जन्म-जन्मान्तर को गन्दा बना डालती है। मानों यह मनुष्य नहीं हैं, पशु भी नहीं हैं, वह कुछ और हैं जो इस सृष्टि से भी परे हैं, जिनका कोई अस्तित्व नहीं! पलभर नीरेन सोचता रहा, तभी हरीश बोल उठा, 'मैं नहीं जानता भैया, तुम्हारे मन में क्या उठा है, परन्तु जो भी हो, एकबार माँ को देख लेने के पश्चात् संशय की यह भीति पलभर भी तुम्हारे मन में टिक नहीं सकेगी, यह बात मैं विश्वास से कह सकता हूँ।'

उस दिन प्रथम बार उसने माँ को देखा। स्नेह से आंचल

फैलाये मानों वह उसे अपने में समेट लेने को आतुर हो उठी ! उस स्नेह की छाया में नीरेन जी उठा ! बड़ा भला लगा उसे और लगा मानों मातृ-विहीन बालक को दुर्गा के पश्चात फिर से अपनी माँ मिल गई हो । और उस दिन जाते समय अनायास ही उसके नयनों में अश्रु झलक आये ।

फिर उस दिन की बात उसे याद हो आई जब वह बीमार पड़ा था । तब कैसे यह महा-पराक्रमी माँ लड़-झगड़ कर उसे यम के हाथों से छीन लाई थी। रात दिन जागकर कैसे उन्होंने सेवा की थी । एक एक बात आज स्पष्ट होकर उसके सामने खड़ी होने लगीं । और आनन्द के दो अश्रु अनायास ही उसकी आँखों से छलक पड़े । माँ के पाँव के पास बैठा वह सोचने लगा, 'कैसा स्नेह है यह जिसके बस होकर मनुष्य क्षण भर में ही अपने को बिसार देता है । उसके सारे दुराव, सारे कष्ट टूट-फूटकर बिखर जाते हैं । और स्नेह का जीवन से यह कैसा साथ है । बच्चा जन्म लेता है, माँ उसे हृदय से लिपटा लेती है और लोरियाँ दे-देकर उसे सुलाया करती है । वह बड़ा होता है तो किलकारियाँ मारकर माँ की गोद में चढ़ जाता है । तब वह चुम्बनों से उसका मुँह भर देती है ! और बड़ा होकर वह माँ को भूलने लगता है, परन्तु नारी के प्रति मोह उसका घटता नहीं, तभी कहीं से जाग उठता है उसमें सैक्स । तब उसे खोज होती है एक साथी की, जिसके आलिंगन में बँधकर वह अपने हृदय की समस्त पीड़ायें खो डाले जिसकी मृदु बातें सुन वह अपनी उनींदी रातों को बिसरा दे । दिन बीतते हैं, समय का चक्र चलता है , और मृत्यु बाँह-ग्रस्त करने को दौड़ पड़ती है । परन्तु उसकी अन्तिम आकांक्षा होती है कि मृत्यू-शय्या पर भी उसका सर उसकी नारी की गोद में रहे । कैसा आकर्षण है यह नारी-

पुरुष का, कौन सी अदृष्यभावना है उसके पीछे, स्नेह को, या फिर ममता की।

नीरेन सोचता रहा तो बहुत देर बाद माँ सहसा बोल उठीं, 'नन्हा सा बालक बना माँ की गोद में क्या बैठा ही रहेगा नीरू, चल उठ, भूखा होगा तू, तेरे लिये खाना लाती हूँ।'

परन्तु हरीश तो वहाँ नहीं हैं, नीरेन ने देखा तो माँ से पूँछ बैठा, 'हरि कहां गया मां ?'

'होगा बाहर कमरे में।' उपेक्षा से कह दिया मां ने।

'वह खाना नहीं खायगा क्या, कहता था सुबह से खाना नहीं खाया।'

तभी गम्भीर हो गई मां। सहसा कठोर होकर बोली 'नहीं।'

नीरेन को आश्चर्य लगा, 'खायगा क्यों नहीं मां।'

'इच्छा है उसकी खाय न खाय, मुझसे क्या अभिमान करता है, मुझे चिन्ता नहीं है उसकी! बचपन से ही तो वह मेरी उपेक्षा करता आया है, अपमान करता आया है, फिर मैं भी हृदय का कौन सा प्यार लेकर उस पर ममता करूँ!' तनिक रुक कर मां फिर बोली, सामने वह होटल देखते हो, वहीं इन दोनों वक्त खाना खाया करता है, मेरे हाथ का खाने से उसका धर्म टूट जाता है न।'

'क्या बात है, मां, यह कैसी विचित्र बात तुम कह रही हो।'

'अभी नहीं, पहले तू खा ले, भूखा होगा, फिर बताऊँगी।' कहती हुई माँ चली गई और कुछ ही देर में थाली लाकर नीरेन के सामने रखदी, फिर स्वयं पास बैठ गई! बोली, खाले बेटा, बहुत बूढ़ी हो गई हूँ, अब ठीक से बना भी तो नहीं पाती।

परन्तु नीरेन ने खाया नहीं वैसे ही पूँछ बैठा, हरीश नहीं खायगा तो मैं भी नहीं खाऊँगा माँ, पहले बताओ तो हुआ क्या है।'

माँ फिर से एक बारगी कठोर हो उठी, वह मेरे हाथ का छुआ खायेगा नहीं, यह बात मैं जानती हूँ। कहता था तुम शूद्रों के हाथ का छुआ नहीं खातीं, उससे तुम्हारा धर्म नष्ट हो जाता है, तो मैं भी क्यों तुम्हारे हाथ का छुआ खाऊँ उससे मेरा भी धर्म नष्ट हो जायगा। देखा नीरू, कैसी विचित्र बात वह करता है। ईश्वर पर विश्वास करता है, परन्तु धर्म को नहीं मानता। कहता है यह छल है, प्रवंचना है। ईश्वर ने धर्म नहीं बनाया, यह बनाया है स्वयं मनुष्य ने, अपने स्वार्थों को सामने रखकर। जो बड़े थे उन्होंने दीनों को और दबा देना चाहा, इसीसे उत्पत्ति हुई धर्म की। मुझे इसमें विश्वास नहीं है, यह धोखा है, निरा भुलावा है। देखा तूने नीरू वह ईश्वर से विद्रोह करता है, बता तो तू क्या पाप के गढ़े में वह नहीं गिरेगा, कैसा कपूत है वह।' कहते- कहते माँ का मुख रक्तिम हो उठा और क्षण भर को वह चुप होकर बैठ गईं।

नीरेन सोचने लगा कि अभी अभी जो यह हरीश माँ की महिमा का इतना गान करता आया है, यह कैसी बात है उस हरीश की ओर अनजाने में ही एक अस्फुट सी हँसी उसके अधरों पर थिरक उठी, बोला, 'पाप-पुण्य क्या है माँ, यह तो नहीं जानता, परन्तु तुम्हारा हरि कपूत नहीं है इतना विश्वास से कह सकता हूँ।' नीरेन उठ खड़ा हुआ, 'दो पल ठहरो माँ, मैं अभी उसे लिये आता हूँ, तुम्हें स्वयं मालूम हो जायगा।'

तनिक देर में ही नीरेन ले आया हरीश को, तब हँसता हुआ वह कहने लगा, 'जाने क्या-क्या सिखा दिया है तुमने

भैया की माँ, परन्तु जो भी हो एक दिन इसका बदला तुमसे अवश्य लूँगा।' तब हँसता हुआ हरीश नीरेन के साथ बैठकर खाने लगा।

४

ग्रीष्म की उदास भरी संध्या करुण हो अन्तिम श्वासें गिनने लगीं, मानों समस्त प्रकृति शोक-ग्रस्त हो मृत्यु-शय्या पर जा पड़ी हो। चहुँ ओर उस विकराल मृत्यू की छाया में छिपा सा धीमा धीमा व्याकुल क्रंदन बहने लगा, जिसके भय से काँप कर पक्षी जा छिपे अपने नन्हें-नन्हें घोसलों में और समस्त पृथ्वी निराश हो मौन हो गई। दूर पश्चिम में एक तारा उगकर धीमे-धीमे टिमटिमाने लगा, एकाकी, बिलकुल अकेला, मानों इस अन्तिम बेला में सहानुभूति के दो अश्रु बहाकर मौन हो जाना चाहता हो।

सारे दिन आज गर्म-गर्म बयार के झोंके चलते रहे, जिन्होंने एक करुणा सी नीरेन के हृदय में भर दी। उसे लगा मानो पृथ्वी मृत होकर शून्य हो गई हो। विचार मग्न वह प्रात से ही चुपचाप लेटा रहा। अब संध्या घिर आई तो मन बहुत भारी हो उठा! उठकर वह पार्क की ओर चल दिया।

समस्त उद्यान वृद्धा की मृत्यू-शय्या सा निद्रा में मौन हो उठा। सारे दिन समीर के आतुर झकोरों से युद्ध करने के पश्चात नन्हीं नन्हीं कलिकायें, इस संध्या बेला में, विश्राम के हेतु अचेत हो गईं।

नीरेन मुरझाये पुष्पों की लम्बी-लम्बी कतारों के सामने जाकर बैठ गया और एक टक आकाश की ओर निहारने लगा। सामने के वृक्ष पर गुलाब की एक नन्हीं सी कली कड़ी धूप से अस्त-व्यस्त हो मुरझा गई। नीरेन के नयन उसी पर गड़ गये, गड़े रहे, जाने कब तक!

तभी देख पाया नीरेन ने नीलिमा को! सामने वाली बेन्च पर बैठी वह निहार रही है शून्य की ओर! आज जाने कैसी मोहनी इस नीलिमा ने बिखेर दी कि पलभर नीरेन उसकी ओर देखता ही रह गया। आज उसे बड़ी मधुर लगी नीलिमा, बड़ी सुन्दर लगी। नीलिमा के उस दिन के वह आतुर नयन एक बार फिर उसके सामने आकर खड़े होने लगे। उसकी उस दिन की उस विवश सी करुण मुद्रा से एक बार फिर नीरेन का हृदय आच्छन्न हो उठा, जिसकी पीड़ा बार-बार उसके अन्तर में ही खट् खट् करके चुभ जाने लगी। इसी एक बात ने जाने कैसी प्रेरणा उसके हृदय में भर दी। नीलिमा के पास जाकर वह धीमे स्वर में पुकार उठा, 'नीलिमा जी।'

नीलिमा मानों चौंक उठी! पलभर वह नीरेन की ओर देखती रही, फिर उठकर खड़ी हो गई, कहा 'आइये।'

नीरेन उसके पास ही बेंच पर बैठ गया! बिना भूमिका बाँधे ही कहने लगा, 'उस दिन जो मैंने किया नीलिमा जी, उसके लिये मुझे गर्व है, क्षोभ केवल इसी बात का है कि उससे आपको कष्ट पहुँचा! इसीलिये पूँछता हूँ कि क्या उस दिन के उस कृत्य के लिये आप क्षण भर को भी मुझे क्षमा नहीं कर सकेंगी। आपको दुःख पहुँचे, ऐसा अभिप्राय तो मेरा कभी भी नहीं था।'

नीलिमा के अधरों पर एक अस्फुट सी मुस्कान फैल कर अदृष्य हो गई, जाने वेदना की या विजय की, जिसे संध्या के अंधियारे में नीरेन देख नहीं पाया। नीलिमा वैसे ही शून्य की ओर निहारती कहने लगी, 'मनुष्य अपने भिन्न भिन्न मार्गों पर चलता है नीरेन बाबू। जिस पथ पर वह चलता है उसी को मानने लगता है, उसी के ढाँचे में वह अपने को ढालना आरंभ करता है। उसी पर उसकी आकांक्षायें, उसके समस्त कार्य निर्धारित हो जाते हैं। मनुष्य जान में या अनजान में जो पथ अपनाये, उसे त्यागना नहीं चाहिये नीरेन बाबू, उससे डिग जाना सत्यता नहीं है, न कोई महत्व ही उसका हो सकता है। मेरा मार्ग आप से भिन्न है, बिलकुल अलग! आपकी विजय हुई है, आपको प्रसन्न होना चाहिये, और मेरी रही है पराजय। परन्तु उसके लिये मुझे दुख नहीं है, खुशी भी नहीं है, मैं शून्य में रहकर जीना जानती हूँ।'

नीरेन दो क्षण उसकी ओर देखता रह गया! यह कैसी नारी है जो स्वयं पराजय स्वीकार कर लेने पर भी जीत जाना चाहती है, उससे सदा ऊपर उठकर चलना चाहती है, यह कैसा व्यक्तित्व है उस नारी का। जाने कैसी भावना से प्रेरित होकर कहने लगा, 'यह विश्व तो बड़ा विषम है। मानव की यहां शक्ति ही क्या, उसका अस्तित्व ही क्या। और मैं नीलिमा जी, इस जीवन संग्राम में तो सदा मेरी पराजय ही रही है। पच्चीस वर्षों की इस लम्बी अवधि में कभी क्षण भर को भी जीत नहीं सका हूँ, कितनी ही बार विजय सामने आ खड़ी हुई, मैं बाँहें फैलाये उसे आलिंगन में भरने को दौड़ पड़ा, परन्तु तभी किसी ने पाँव पकड़कर खींच लिये और मैं फिसल कर दूर जा पड़ा। सदा ऐसा ही होता

रहा। परन्तु कभी किसी ने सहारा नहीं दिया, कभी किसी ने हाथ पकड़कर नहीं उठाया।' कहता कहता नीरेन आकाश की ओर देखने लगा।

नीलिमा शायद उसे समझ नहीं सकी। उसे लगा नीरेन एक विचित्र-सा युवक, हृदय अनन्त गहराइयों तक जिसका वेदना से भर उठा हो। क्षण भर बाद वह कहने लगी, 'रहने दीजिये नीरेन बाबू, वह अपनी निजी बातें हैं। अपने ध्येय को लेकर चलना ही श्रेष्ठ है, उसी में अपना विकास है और अपनी प्रसन्नता भी! किसी मानव विशेष के सुख और वेदना का उसमें कोई स्थान नहीं। उस दिन जो हुआ उससे समाज में कोई परिवर्तन नहीं आया, यदि न होता तब भी समाज बदलता नहीं। आप अकेले समाज से दूर रहकर उसे कभी नहीं बदल सकते नीरेन बाबू, यह बात मैं विश्वास से कह सकती हूँ।'

नीरेन ने उत्तर नहीं दिया। कितनी ही देर दोनों चुप बैठे रहे। फिर नीलिमा बोल उठी, 'अच्छा नीरेन बाबू जान सकती हूं, इतनी देर से बैठे आप क्या सोच रहे थे।'

वैसे ही कहने लगा नीरेन, 'देखती हैं आप यह मुरझाई कलिकायें कितनी मनोमुग्धकारी हैं यह, मानों भारत माँ का हृदय हो।'

नीलिमा ने जैसे पिछली बात सुनी नहीं। वह खिलखिला कर हँस पड़ी, कोमल शीतल-सी हँसी। संध्या की शून्यता में हरी-हरी घास पर पड़े ओस-बिन्दु उसे सुनकर आनन्द-विह्वल होने लगे। कितनी ही देर पश्चात वह बोली, 'इन मुरझाई कलियों में आपको ऐसा कौन सा सौन्दर्य दीख पड़ता है नीरेन बाबू, जिसने आपका मन इस प्रकार मोह लिया है!'

नीरेन विक्षिप्त-सा हो उठा, 'तो क्या संसार में केवल सौन्दर्य ही महान है, कुरूपता का कोई मूल्य नहीं।'

नीलिमा एक बार फिर हँस पड़ी, 'नहीं कुरूपता का निजी कोई मूल्य नहीं, यदि कोई मूल्य उसका है तो केवल सौन्दर्य को महत्व देने के लिये।'

नीरेन को लगा मानों वह गिरा जा रहा है, नीचे बहुत नीचे। हृदय एकबारगी उसका करुणा से भर उठा! जाने कैसे स्वर में वह कहने लगा, हाँ पूँजीपतियों के ज्योतिर्मय नयनों के सम्मुख कुरूपता का महत्व हो ही कैसे सकता है। अलसाया-सा प्रभात जब चहुँओर अपनी स्वर्णिम रेखायें बिखेर देता है, तब आप अपने कोमल बिछौनों से उठ बैठते हैं। पुष्पों का सौरभ भरे सुगन्धित बयार आपके अंगों को थप-थपाकर उन्मत्त बना देती है। किसी के दो पुलकभरे चुम्बन आप अपने रक्तिम अधरों पर अनुभव करते हैं और मुग्ध होकर कह उठते हैं, 'अहा, कितनी मनोमुग्धकारी है यह उस परमपिता की प्रकृति।' परन्तु आपके इन महलों के सामने किसी दरिद्र की छोटी सी-टूटी फूटी झोपड़ी में जाकर उसका नन्ह-सा बालक भूख से व्याकुल हो चीख उठता है। महीनों से रोग-ग्रस्त उसकी पत्नी जाने कितनी वेदना हृदय में छिपाये चुपके से विवशता के दो आँसू बहा देती है। तब कहाँ जाता है आपका वह सौन्दर्य और कहाँ जाता है आपके उस महामयी परमपिता की मनोमुग्धकारी प्रकृति। नीरेन एक बार आवेश से काँप कर चुप हो गया।

नीलिमा जैसे क्रोध से पागल हो उठी। यह परिहास क्षण भर को उसे असह्य हो उठा। मुट्ठियां उसकी दोनों बँध गईं। कठोर होकर कहने लगी, 'व्यंग सुनने का मेरा अभ्यास

नहीं है नीरेन बाबू। जीवन में मैंने कभी ऐसी बातें नहीं सुनी, कभी सुन भी नहीं सकूंगी। एक दिन मैंने सोचा था कि आपके अन्दर भी हाड़-मास का हृदय है, सभ्यता के नाते आप भी मनुष्य हैं। परन्तु आज देखती हूँ कि मेरी वह धारणा कच्ची भीत की भाँति टूट कर बिखर पड़ी है। आप पत्थर हैं, दूसरों की भावनाओं में खेलना आपको खूब आता है। संसार की समस्त क्रूरता आपके प्राणों में भर गई है। आपसे बातें कर मैं अपना अपमान करना नहीं चाहती, चले जाइये आप, चले जाइये यहाँ से।" कहते कहते नीलिमा आवेश से कांपती क्षण भर में ही आँखों से ओझल हो गई।

नीरेन रह गया मौन, निस्तब्ध। उसे लगा जैसे अनजाने में ही उसने नीलिमा के अन्दर कहीं कुछ छू दिया है। जिसकी पीड़ा उसके लिये असह्य हो उठी है। कैसी यह नारी है, कैसा है उसका व्यक्तित्व जो इतनी सरलता से उसे पराजित कर चला गया। उसके भीतर की नैतिकता इस नारी के अभिमान के आगे कैसी विमूढ़ निश्चल सी रह गई। यही एक बात बार-बार नीरेन के अन्तर में घूमती रही।

आज उसके हृदय पर एक बार फिर से अतीत की वह धुँधली सी रेखायें उभर उभर कर झाँकने लगीं। उसी में खोकर एक बारगी वह मुग्ध हो उठा। अरे, कैसा सपना था वह जो टूट कर बिखर चुका है, केवल कहीं प्राणों में उलझी-सी रह गई है उसकी एक स्मृति मात्र, जो आज भी वैसी ही जटिल बनी है; इन कई वर्षों की लम्बी अवधि में कहीं से भी मिट कर छिप नहीं सकी है। आज एक बार फिर से उसका वह बिसरा-सा मधुर जीवन अतीत की गहराईयों से मुँह निकाल कर झाँकने लगा।

वह नयना थी ! बीस वर्ष की उस लड़की ने एक चौदह वर्ष के लड़के से प्रेम किया था। उस छोटे-से मोहल्ले में एक छोटी सी कोठरी, थोड़ा सा इधर उधर छितरा सामान बस यही तो थी उसकी पूँजी।

उसी कोठरी के सामने था नयना का मकान। घर में दो प्राणी थे। वह और उसका पिता। पिता उसका शराबी था। शराब के लालच में नित्य नये-नये गुण्डों को वह ले आता।

उनकी ललचाई आँखों से उसे बड़ा भय लगता था। प्रतारणा से वह काँप उठती थी। उसके अन्तर का कोई पीड़ा से चीत्कार कर उठता। अनेक बार भाग कर वह नीरेन के पास आ जाती और दरवाजे बन्द कर लेती। फिर नीरेन के समीप ही, उसकी खटिया पर पड़ रहती और उसे हृदय से सटाये सारी रात बिता देती। आतुर होकर वह कहने लगती, मुझे उनकी पैशाचिक निगाहों से बड़ा डर लगता है भैया, भय से मैं काँप उठती हूँ ! लगता है जैसे वह मुझ पर टूट पड़ना चाहते हों, मुझे नोच-नोच कर खा जाना चाहते हों ! तुम्हारे पास आकर मुझे बड़ी शान्ति मिलती है। मेरी समस्त आशंकायें पलभर में ही दूर हो जाती हैं। मैं पशुओं की भाँति नहीं मनुष्य की भाँति जीना चाहती हूँ। उनके उन अश्लील इशारों से दूर तुम्हारी बाहों में बधँकर मैं सो जाती हूँ भैया तो जी उठती हूँ !' इसी प्रकार बातें करती समस्त रात वह उसके पास पड़ी रहती और फिर प्रातः में अन्धकारमय क्षणों में ही नीरेन को निद्रा की गोदी में सौंप चुपके से उठकर चली जाती। नीरेन को भी उसके स्नेह के आचंल में छिपकर लगता मानों उसके समस्त दुख-दर्द, पीड़ा प्रतारणा दूर हो गई हो और वह चुपचाप पड़ा निर्बोध बालक की भाँति उसकी ओर निहारता रहता।

उस दिन नीरेन के सम्मुख वह अज्ञात ही रह गई थी परन्तु आज तो उसके मानस-पटल पर स्पष्ट अंकित है कि नारी किसी भी अवस्था में हो पुरुष का आश्रय चाहती है। वह अपने को एक पुरुष पर छोड़ निशाचिन्त हो जाना चाहती है। जो संसार की ललचाई निगाहों से दूर हटाकर उसे अपनी पलकों में छिपाये रहे! अपनी जीवन नैया को स्वयं अपने हाथों से खेकर पार ले जाना वह नहीं जानती, न ही इस भावना का वह आदर कर सकती है। वह तो केवल एक पुरुष के सहारे चुपचाप इस जीवनयात्रा के दुसह पथ पर चलती रहना चाहती है। नारी की कैसी ही भावना यह क्यों न हो, परन्तु आश्रय वह चाहती है अवश्य।

फिर एक दिन आया। संध्या अपनी कालिमा प्रकृति के मुख पर पोतने में लीन हो गई! तभी आतुरसी नयना भय से काँपती नीरेन के सम्मुख आकर बैठ गई! नयन उसके सूज कर लाल होगये थे, तभी उनसे दो बड़े-बड़े अश्रु टपक पड़े टप-टप!

नीरेन कुछ भी समझ नहीं सका, अवाक हो उसकी ओर देखता रह गया। तभी नयना ने उसकी गोदी में मुँह छिपा लिया और फूट-फूट कर रोने लगी। नीरेन चुपचाप उसके लम्बे लम्बे केशों पर हाथ फेरता पूँछने लगा, 'क्या हुआ नयना, बताओ मुझे।'

नयना वैसे ही पड़ी रही। कहने लगी, 'सच कहती हूँ, मैने जीवन के किसी भी क्षण में ऊचित-अनुचित तुमसे कुछ भी नहीं छिपाया! तुम्हारे सम्मुख आकर जो मन के अन्दर है, बाहर है, सब कुछ कह डाला। तुमसे आज भी कुछ नहीं छिपाऊँगी। कल मैं लुट गई भैया! पिता जी एक बोतल

शराब के लोभ में कुछ गुण्डों को ले आये। उन्होंने मेरा सब कुछ छीन लिया, सब कुछ लूट लिया! तुम्हारे पास आने को कितना मन छटपटाता रहा परन्तु क्या करती लाचार हो गई। मैं मरना चाहती हूँ, परन्तु मैं बहुत कायर हूँ, बहुत कायर हूँ भैया!' नयना सिसकिया मारने लगी।

नीरेन उठ खड़ा हुआ। आवेश से काँप कर कहने लगा, 'मैं देखूँगा उन्हें नयना, तुम यहीं बैठी रहो। ऐसा अत्याचार मैं प्राण रहते कभी नहीं होने दूँगा, कभी भी नहीं।'

नयना उठकर बैठ गई। नीरेन को खींच कर अपने हृदय से लगा लिया। कहने लगी, 'नहीं, तुम बच्चे हो भैया। तुम समझ नहीं सकोगे। उनपर तुम्हारा कुछ भी वश नहीं चल सकेगा। यह विश्व तो शक्तिशालियों के पीछे चलना जानता है। तुम अकेले निर्बल, वहाँ कर भी क्या सकोगे। अब कुछ भी नहीं हो सकेगा, सब कुछ जा चुका है।' फिर दो क्षण रुक कर वह कहने लगी, 'तुम यहीं बैठो मेरे पास, इससे मुझे शान्ति मिलती है, सान्तावना मिलती है।' कहते कहते उसने नीरेन को अपने हृदय के और निकट खींच लिया।

दिन बीतते गये। एक दिन नयना आकर कहने लगी, 'मुझे बचालो भैया, मैं मर जाऊँगी! पिता जी थोड़े से रुपयों में मुझे एक बुड्ढे के हाथ बेच देना चाहते हैं, यह मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगी, कभी भी नहीं! बस तुम्हीं तो मेरे अपने हो, इसीसे तुम्हारे पास दौड़ आई हूँ! मैं तुमसे प्यार करती हूँ, मैं तुमसे शादी करूँगी। मुझे अपने साथ ले चलो, बहुत दूर, जहाँ इन लोगों की ललचाई आँखें मुझे देख न सकें, छू न सकें, नहीं तो मैं मर जाऊँगी, बोलो, ले चलोगे मुझे अपने साथ, ले चलोगे!' नयना व्याकुल हो उठी। नीरेन ने चुपचाप मौन स्वीकृति दे दी।

उसी दिन संध्या समय जाने का निश्चय था ! नीरेन राह देखता रहा, परन्तु नयना नहीं आई। दूसरे दिन नीरेन ने सुना नयना चली गई, उसी बूढ़े के साथ ! तब कितनी ही देर नीरेन नयनों में अश्रु भरे सोचता रहा' कितनी विवश है यह नारी, कितनी करुण।

नियति का चक्र चलता रहा। जीवन घूमता रहा, निर्विकार अबोध गति से। धीरे धीरे दो माह बीत गये। तभी एक दिन नीरेन ने सुना नयना फिर से लौट आई है, परन्तु जीवन में एक महान परिवर्तन लेकर। आज वह विधवा है, समाज की उपेक्षित, कलंकित विधवा !

उस दिन जीवन की अन्तिम बेला में उसने नीरेन को बुलाया ! रोग ग्रस्त-शय्या पर पड़ी वह चुपचाप उसकी ओर निहारने लगी। उसे अपने पास बैठाकर नयनों में अश्रु भरे कहने लगी, 'अब मैं अधिक नहीं जिऊँगी भैया, जीवन से अब मन ऊब उठा है, अधिक अब जीना भी नहीं चाहती। मैं जा रही हूँ, इस नश्वर संसार से बहुत दूर। संसार में बस तुम्हीं तो अपने हो, इसीसे तुम्हें छोड़ते दर्द लगता है ! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, बहुत प्यार करती हूँ, कभी तुम्हें सुख तो दे नहीं सकी आज एक भार दिये जा रही हूँ। जीवन की झंझा में फंसकर मुझे कभी बिसरा न देना। नहीं तो सदैव मेरी आत्मा दुखी ही रहेगी, यही सोचकर कि संसार में ऐसा कोई भी नहीं जो मेरी यादकर दो आँसू बहा लेता हो।' कहते कहते नयना की आखों में अश्रु भर आये और दो क्षण को चुप होकर पड़ रही। फिर एक चाँदी की डिबिया नीरेन के हाथ में रखती हुई बोली। 'लो यह मेरी माँग का उजड़ा सिंदूर है। आज इसे ही तुम्हें दिये जाती हूँ। इसे देखकर कभी-कभी मेरी याद हो आया करेगी।'

नीरेन कुछ भी कह नहीं सका, कुछ भी समझ नहीं सका! उसी दिन संध्या समय उसने सुना नयना सारे बन्धन तोड़कर चली गई!

नयना चली गई परन्तु उसकी वह स्नेह भेंट आज भी उसके पास वैसी ही सुरक्षित रक्खी है। आज वह सोचता है तो लगता है कि कैसी विचित्र थी वह नारी! कैसा था उसका आदर्श। विवाह को वह वासना-पूर्ति का साधन नहीं मानती थी, वह मानती थी उसे एक चिर अमर बन्धन! एक साथी पाने की भावना से वह उसे देखती थी। यदि कहीं वासना की भावना थी तो जैसे वह ऊपर आना नहीं चाहती थी! वह पशुओं की भाँति नहीं मनुष्य की भाँति जीना चाहती थी। एक चौदह वर्ष के लड़के से उसने प्रेम किया था, उसके साथ वह शादी करना चाहती थी। पता नहीं यह कौन सी भावना थी! शायद ममता की भावना हो, या आश्रय की, या फिर कहीं बहुत नीचे छिपा हो सैक्स! वह उसके साथ भाग जाना चाहती थी, शायद इसलिये कि वह उससे प्यार करती थी या फिर उसे उन लोगों की लल-चाई निगाहों से डर लगता था, या उसका बाप धन के लोभ में उसे एक बूढ़े को बेच रहा था।

ममता, आश्रय और सैक्स, यह एक साथ मिल कर कुछ समस्या सी बना लेते हैं जो सुलझाये नहीं सुलझती! फिर एक नारी उसकी माँ थी, बचपन में उसने उसे लोरियाँ दे-दे कर सुलाया, चुम्बनों से उसका मुँह भर दिया और फिर छुट-पन में ही उसे छोड़कर चल बसी। और एक यह है हरीश की माँ, कैसा ममत्व है उनका, इन्हें देखकर फिर से अपनी छुटपन की माँ याद हो आती है, फिर सब से ऊपर आई यह नीलिमा! कितनी सरलता से उसे परास्त कर वह चली गई,

जैसे वह बच्चा हो, बिल्कुल निर्बोध बालक। यह चार नारियाँ-इनमें भिन्नता होते हुये भी कितनी समानता है !

यही सोचते-सोचते एक बार उसने ऊपर देखा तो मेघों के फट जाने से चन्द्र की शीतल ज्योत्सना ने उसे मुग्ध कर दिया।

५

नीरेन सोकर अभी बिस्तर से उठा ही था कि नीलिमा की कार उसके दर्वाज़े पर आ खड़ी हुई ! उत्सुकता से नीरेन उठ बैठा। तभी नीलिमा उसके सामने आ खड़ी हुई। आश्चर्य से वह उसकी ओर देखने लगा, 'आइये नीलिमाजी।'

नीलिमा वहीं उसकी खाट पर बैठ गई और नीरेन के अधरों पर एक अस्फुट सी मुस्कान आकर अदृश्य हो गई, जाने नीलमा उसे देख पाई या नहीं।

नीरेन कहने लगा, 'आप लोगों जैसी मखमल की गद्दीदार कुर्सियाँ तो यहाँ हैं नहीं। बैठना आपको इसी टूटी खटिया पर होगा, इसके लिये चाहें तो आप मुझे क्षमा कर सकतीं हैं।'

क्षण भर चुप रहकर नीलिमा बोली, 'मैं आपका यह व्यंग जानती हूँ, इससे अधिक की मैंने आपसे आशा भी नहीं की थी। परन्तु इसका विरोध आज नहीं करूँगी, आज इतना सब सह लेने की शक्ति मुझमें है, इतना विश्वास के साथ कह सकती हूँ।' नीलिमा छत को ओर देखने लगी।

'इतने प्रातः अचानक कैसे दर्शन दे डाले नीलिमा जी,' पूँछ बैठा नीरेन। तब एकबारगी नीलिमा लाज से गड़ गई- अरे, क्यों वह यहाँ चली आई। क्या अभिप्राय है उसका। दूसरे ही क्षण वह कठोर होकर कहने लगी, 'आपको आश्चर्य हो रहा होगा, अपनी विजय पर गर्व भी हो रहा होगा, यह बात मैं खूब जानती हूँ। आप कहें तो मैं जा भी सकती हूं।'

सूर्य की प्रखर किरणें नव-प्रभात का नव संदेश लिये नीलिमा की लम्बी-लम्बी अलकों से अठखेलियाँ करने लगीं। ठंडी बयार के आतुर झखोरे खिड़की को लांघकर अपने आलिंगन में नीलिमा के आंचल को समेटे नीलाकाश में उड़ा ले जाने को व्याकुल हो उठे। नीरेन मुग्ध होकर उसकी ओर निहारने लगा। उसका मन बार-बार पुकारने लगा, 'नहीं ऐसा सौंदर्य तो कभी कहीं नहीं देखा।' उसे लगा मानों सदा नीलिमा उसके सन्मुख बैठी रहे और वह उसे निहारता रहे—इसी प्रकार निश्चल। जाने कैसी प्रेरणा से प्रेरित हो वह कहने लगा, 'यह दीन-हीन मानव गर्व करना क्या जाने नीलिमा जी, दरिद्रों का तो शायद यह अधिकार भी नहीं है।'

नीलिमा ने जैसे सुना नहीं, कहने लगी, 'आप सुनना चाहते हैं नीरेन बाबू, मैं यहाँ क्यों आई हूँ।'

'कहिये।'

'व्यर्थ में आपका अधिक समय मैं गवाना नहीं चाहती नीरेन बाबू। अधिक देर मैं ठहर भी नहीं सकती। विवश न हो जाती तो मैं यहाँ कदापि न आती, परन्तु जाने कौन सा आकर्षण मुझे यहाँ तक खींच लाया, इसका मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है। जो भी हो अब आ गई हूँ तो जाऊँगी नहीं, जो कहना है कहूँगी ही। आज मन में जाने कितनी वेदना भर उठी है।

जो समाज मेरा है, जिसमें सदा मैं रहती आई हूँ आज उसी का नग्न रूप देखा है। कितना छल, कितनी प्रवंचना उसमें भरी है। कितना दिखावा है उसमें। एक मित्र के यहाँ कल गई थी अनेक व्यक्ति वहाँ एकत्रित थे, वहीं जो कुछ देखा उससे बार-बार हृदय घृणा से काँप उठता है। हमारा समाज अपना अहङ्कार लेकर जीता है, अपने स्वार्थ लेकर जीता है, छल मानों उसके कण-कण में समा गया है! उसके सम्मुख मान्य-अमान्य जैसे कुछ भी असम्भव नहीं, आदर्शों का वहाँ मूल्य नहीं है, कितना घृणास्पद है यह सब।' क्षण भर को चुप हो जैसे वह उसकी कल्पना से भी काँप उठी। फिर बोली, 'मैं सदा से लाड़ प्यार के बीच पल कर पली हुई हूँ। पिता की स्नेह छाया ने माता का अभाव पूर्ण करने के लिये मेरी कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रक्खा है। ऐसे समाज में चारों ओर से घिरी रहकर मैं संसार को अधिक नहीं देख पाई, अधिक उसे परख भी नहीं सकी। आज उसकी एक झलक देखी तो मैं व्यथा से काँप उठी। क्या समस्त संसार इतना घृणास्पद है, इतना दीन पतित है, या आपका समाज इससे कुछ भिन्न है, यहाँ देखने आज आपके पास आई हूँ। आप के साथ रहकर मैं कुछ दिन काम करना चाहती हूँ। यदि कुछ जान सकी तो सच कहती हूँ, जीवन में कभी आपका यह एहसान नहीं भूलूँगी,' कहकर नीलिमा शून्य नेत्रों से खिड़की के बाहर देखने लगी।

नीरेन के हृदय से अनजाने में ही एक धीमी सी उसास निकल गई! कुछ देर बाद वह कहने लगा, 'समाज तो जल रहा है नीलिमा जी, वह भट्टी में पड़ा है, तप रहा है, शताब्दियों से, युगों से, जैसा चाहो उसे गढ़ लो, जैसे चाहो उसे बना डालो, परन्तु बनायगा कौन, मनुष्य ही तो। मनुष्य में शक्ति है, वह समाज को नयी नीव पर निर्धारित कर सकता

है, परन्तु इसके लिये आवश्यकता है आदर्शों की, दृढ़-संकल्प की ! नहीं तो विश्व का स्वार्थी बर्बर वर्ग उसे गिराना चाहेगा और वह गिरेगा, अवश्य गिरेगा।'

'परन्तु कैसे आश्चर्य की बात है नीरेन बाबू, मनुष्य समाज को गढ़कर स्वयं उसके आधीन हो गया है, उसके चंगुल में जा फंसा है, इसीसे शायद मानव इतना घृणास्पद बना है।'

'समाज के आधीन मनुष्य हुआ अवश्य है, परन्तु उसका कौन सा वर्ग, यही दरिद्र वर्ग ही तो। धनिक तो समाज के आधीन नहीं हो सकते। वह तो उसकी उपेक्षा भी कर सकते हैं। समाज बना है दरिद्रों पर बन्धन लगाने के लिये ! धनिकों का उनपर आधिपत्य जमाने के लिये। समाज से बाहर रहकर ही यह तुम लोगों का समाज इतना हीन है, इतना घृणास्पद है।'

एक दिन हरीश ने भी तो बिलकुल ऐसी ही बात कही थी, यही नीरेन सोचने लगा। परन्तु हरीश के हृदय की भावनायें नीलिमा से कितनी भिन्न थीं। हरीश लेकर आया था संसार के लिये वेदना और यह नीलिमा लाई है उसके लिये विद्रोह। समाज के लिये हरीश के मन में थी पीड़ा, एक अतीव सहानुभूति और नीलिमा के हृदय में है उसके लिये घृणा, एक अबाध अवहेलना। यह कैसे दो रूप हैं— उस समय लाख प्रयत्न करने पर भी नीरेन समझ नहीं सका !

दोनों चुपचाप बैठे शून्य की ओर निहारती रहें ! घोर निस्तब्धता उनके चारों ओर घुमड़ती रही और हृदय में विप्लव की आँधी से जाने कितने मान्य-अमान्य विचार आ-आकर बिचरने लगे।

तभी आ पहुँचा हरीश। नीलिमा चौंक कर उठ खड़ी हुई, 'अच्छा अब चलूंगी नीरेन बाबू, फिर आप मुझे क्या करने को कहते हैं।'

नीरेन ने उसे रोकते हुये हरीश से परिचय कराया, 'बैठिये नीलिमा जी, यह हैं हरीश।'

नीलिमा बैठ गई। नीरेन कहने लगा, 'देखो हरीश, आज नीलिमा जी हमारे बीच आना चाहती हैं, हमारे साथ मिलकर कार्य करना चाहती हैं। हमारा जीवन क्या है, कैसा है, उसी का एक बार वह निरीक्षण करना चाहती हैं। तुम इस विषय में क्या कहते हो।'

उत्साहित होकर हरीश कहने लगा, 'बड़ा हर्ष है नीलिमा जी, आप हम लोगों के बीच आना चाहती हैं, बड़ा सौभाग्य है हमारा। आज मैंने देखा, हमारे साथी बहुत थक गये हैं। संघर्षों के निरन्तर थपेड़ों ने थकाकर उन्हें चूर कर डाला है। यदि ऐसे ही चलता रहा तो एक दिन वह फिसल जांयगे, अवश्य गिर पड़ेगें। प्रति दिन वह निरुत्साह होते जा रहे हैं। आज मैंने देखा, उनमें स्फूर्ति भरने के लिये प्रेरणा भरने के लिये है एक नारी की आवश्यकता, जो उन्हें अपनी महा शक्ति-शाली बाहों से सम्भाल लें, पल-पल टूट कर बिखर पड़ने से उन्हें रोके रहे। आपको पाकर वह एक नवीन जीवन ज्योति पा सकेंगे, एक नई प्रेरणा, एक नये उत्साह से उनका मन भर उठेगा। तब उन्हें अपने जीवन में कुछ भरा-भरा सा लगेगा, मानों आप एक अनन्त दीप-शिखा हैं जो चिरकाल के लिये उनके जीवन में अपनी छाप छोड़ देगी, उनके कण-कण को उजियाला कर देगी। आपका नारीत्व, आपका ममत्व उन्हें एक नवीन सन्देश पहुँचाता रहेगा जिसके सहारे वह अपने ध्येय

पर पहुँचने का उत्साह पा सकेंगें। आप उनके लिये होंगी महा-परिक्रमकारी मां ! आपको वह माँ कह कर पुकारेंगें। निर्बोध बालकों की भांति आपकी आज्ञा का पालन करेंगें। बस सप्ताह में एक बार जाकर उन्हें आदेश दे आना होगा।'

नीलिमा के हृदय से एक धीमी-सी उसास निकल गई। मन में उसने सोचा, 'माँ' कहेंगे वह लोग और साथ ही उसे लगा मानों वह बूढ़ी हो गई हो, बहुत बूढ़ी। टूटे दाँत, झुर्रियोंदार मुख, दुबला शरीर बार बार आकर उसकी पलकों में नाचने लगा, एक बार वह काँप कर देखती रह गई। अरे क्या है यह सब, कैसा विचित्र है यह।

❀ ❀ ❀

'आप मां से मिलेंगी नीलिमा जी,' बहुत देर बाद नीरेन ने पूछा।

इस अनजाने प्रश्न से एक बारगी नीलिमा जैसे चौंक उठी, 'कौन माँ, नीरेन बाबू।'

'एक माँ है हमारी, जो नित्य एक नया उत्साह एक नव-प्रेरणा हमारे हृदय में भरती रहती हैं। हमारे प्रत्येक कार्य के पीछे, उसकी गहराइयों में वह छिपी रहती है। यह हरीश है, सदा उनसे विद्रोह करता रहेगा। कभी उनकी किसी की बात को स्वीकार नहीं करेगा। माँ भी सदा उसे कपूत कहती रहेंगी, परन्तु मैं जानता हूँ इसके कणकण में भी वही माँ विद्यमान हैं, जिनकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती ! बोलिये आप देखेंगी उन्हें '

तब वैसे ही नीलिमा ने कह दिया, 'आप कहेंगे तो चली चलूँगी।'

कार जब हरीश की कोठी के आगे रुकी तभी मां उपासना करके उठीं थीं ! नीरेन को देखकर वह बाहर आ खड़ी हुई ! परन्तु साथ ही देखा नीलिमा को । ठिठककर पलभर को वह वहीं खड़ी रह गई ! बिलकुल आधुनिक ढङ्ग की यह लड़की नीलिमा! ऊपर तक खुली हुई बाहें, ऊँची एड़ी की सेन्डल, हाथ में पर्स और सिर से हटकर कन्धे पर पड़ा हुआ आंचल जिससे उसकी लम्बी घुंघराली अलकें उसके सुडौल कन्धों पर बिखर पड़ी थीं—उन्हें शायद कुछ अच्छा नहीं लगा । लड़कियों की आधुनिक शिक्षा की विरोधनी उस मां को नीलिमा का स्वागत करने में कुछ संकोच सा होने लगा। यह लड़कियां आचार-विचार का कुछ भी ध्यान नहीं रखती । जहां चाहेंगी घूमेंगी, जो चाहेंगी खायेंगी, जिसे चाहेंगी छुयेंगी, पुरुषों की बराबरी का दावा करेंगी,क्या आदर्श रह जाता है उनका । यही सोच सोच कर एक घृणा, एक अटूट अश्रद्धा उनके प्रति मां के हृदय में उमड़ने लगती है । आज भी ऐसा ही हुआ ! इस नीलिमा को देखकर घोर अश्रद्धा उनके मन में भर गई और वह दो क्षण को वहीं ठिठककर खड़ी रह गई ।

नीरेन ने परिचय कराया, 'यही हैं माँ, नीलिमा जी !'

नीलिमा ने आँचल हाथों में दबा, दोनों हाथ जोड़े । और अभिवादन को झुक गई। एक मधुर सी हँसी उसके अधरोंपर खिल पड़ी, कहने लगी, 'आज मैं बिना बुलाये ही आपके दर्शनों को चली आई हूँ मां, क्षमा करना । नीरेन बाबू से आपका परिचय पाकर आपके दर्शनों का लोभ बरदाश्त न कर सकी, सोचा चलकर माँ की पग-धूलि ही ले आऊँ।'

माँ एक पग पीछे हट गई ! मुस्कुराती हुई बोलीं, 'आओ बेटी, बड़ा अच्छा किया तुमने आ गई। इस नीरू ने तो पहले मुझे तुम्हारे विषय में कभी बताया ही नहीं।'

माँ मुस्कराईं अवश्य, ऊपर से स्वागत के हेतु कोई अभाव भी नहीं रह गया ! परन्तु नीलिमा को लगी यह मुस्कान कुछ अस्वाभाविक सी, मानों जबरन खींच कर उसे अधरों पर लाया गया हो। नीलिमा खिन्न हो उठी। उसने देखा माँ उससे दूर जाकर बैठी हैं मानों उसकी छाया से भी अपवित्र हो जायँगी।

दो ही पल में वह उठ खड़ी हुईं, कहने लगीं, 'तुम बैठो बेटी, अब मैं चलूँगी, नीरू के लिये खाना बनाना है।' बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वह कमरे से बाहर हो गईं। नीलिमा अवाक बैठी उन्हें देखती रही।

तभी नीरेन कहने लगा, 'मां दिखावा बिलकुल पसन्द नहीं करती नीलिमा जी, वह आचार-विचार बहुत मानती हैं, इसी बात को लेकर हरीश सदा उनसे विद्रोह करता रहता है। नारी की आज की आधुनिकता पर उन्हें विश्वास नहीं है। शायद इसीसे आज आप उन्हें कुछ विचित्र सी लगी हैं।'

पल भर को नीलिमा इस असहनीय अपमान की प्रतारणा से काँप उठी। मां का ठिठककर रुक जाना, उससे दूर जाकर बैठना और तुरन्त उठकर चले जाना अब स्पष्ट होकर उसके सम्मुख खड़ा होने लगा। यही हैं क्या वह ममतामयी माँ, जिससे इन लोगों को प्रेरणा मिलती है, जो इनमें उत्साह भरती हैं। कितनी तुच्छ है यह, कितनी हीन।

अतुल वेदना नीलिमा के कण-कण में भर उठी। जितनी आज वह गिरी है, जीवन में इतनी कभी नहीं गिरी। उसे लगा जैसे उसका वह चिर-संचित गर्व क्षण भर में ही टूटकर बिखर जायगा। कठोर होकर वह उठ खड़ी हुई, 'अच्छा अब चलूँगी नीरेन बाबू।'

नीरेन को आश्चर्य लगा। वह कुछ भी समझ नहीं सका। 'क्या इतना शीघ्र ही चला जाना होगा ?'

'हाँ, मेरी अपवित्र छाया से शायद आपकी मां की प्रत्येक वस्तु दूषित हो जायगी, जीवन के सब धर्म-कर्म नष्ट हो जायँगे। मेरा जाना ही अधीक ठीक होगा।'

नीरेन को नीलिमा का गर्व स्पष्ट होकर दीखने लगा। उसे लगा जैसे कहीं कुछ नुकीला सा नीलिमा के हृदय में अचानक 'खट्' करके छू गया है। जिसकी पोड़ा ने एकबारगी उसे इतना विकल बना दिया है। गम्भीर होकर वह कहने लगा, 'आप जाना चाहेंगी तो जायँगी ही नीलिमा जी, आपको रोकने का अधिकार तो मुझे है नहीं। फिर भी इतना कहुँगा कि यदि कुछ देर और ठहर सकें, तो जैसा आपने माँ को समझा है वैसी वह नहीं हैं, यह बात जान जाँयगी।'

नीलिमा कठोर बनी रही, 'अपमान सहकर चुपचाप बैठी रहूँ, ऐसी साधना मैंने कभी नहीं की नारेन बाबू, अब अधिक यहाँ रुक नहीं सकूँगी।'

'शाम को सभा में आप आ सकेंगी।'

'नहीं।'

'आप आना चाहती थीं न।'

'अब नहीं आना चाहती।'

'हमारे समाज का निरीक्षण करने का उत्साह क्या इतना शीघ्र शीतल पड़ गया है।'

'व्यर्थ की बातें सुनने का समय मेरे पास नहीं है नीरेन बाबू, मैं जा रही हूँ। हरीश यहाँ नहीं है, नहीं तो एक बार उन्हें प्रणाम करती जाती,' कहते कहते नीलिमा पलभर में ही कमरे से बाहर हो गई। नीरेन अवाक उसे देखता रह गया।

६

'एक बार नीलिमा को ला नहीं सकोगी माँ,' माँ का आँचल पकड़े हरीश विनीत हो उठा।

गोधूलि की बेला में हरीश के इस स्नेह को देखकर माँ आनन्द विभोर हो तनिक सी मुस्करा पड़ीं। कहने लगीं, 'उस लड़की को लाने को कहता है हरीश, जो उस दिन मुझसे विद्रोह करके, मेरी उपेक्षा करके भाग गई है। जैसा तू है, वैसों के ओर ही तेरी सदा से आसक्ति रही है। उन्हीं पद-चिन्हों पर चलकर तू अपना अभिमान मानता आया है। तिससे मैं सुन चुकी हूँ, कैसी अपवित्र वह लड़की नीलिमा है।'

'तुम्हारे लिये अपवित्र हो सकती है माँ, क्योंकि तुम उसे पहचान नहीं सकीं। केवल वाह्य-रूप ही उसका तुम देख सकीं, उसके भीतर उसके विशाल हृदय में जो एक आग है उसे देखने का कभी तुमने प्रयत्न नहीं किया, वहाँ तक पहुंचते पहुंचते तुम लौट आईं। एक बार उसके भीतर झाँककर देखतीं

तो स्वयं तुम्हें अपनी धारणा पर दुख होने लगेगा।' तनिक रुक कर हरीश पूछने लगा, 'अच्छा माँ क्या तुम्हारे धर्म में अपमान करने वाले से विद्रोह करना भी अनुचित है ?'

'क्या कहता है हरि, मैंने उसका अपमान किया है। और ये लोग क्या ईश्वर का अपमान नहीं करते, धर्म का अपमान नहीं करते, स्वयं अपना अपमान नहीं करते।'

हरीश आतुर हो उठा, 'यह तो नहीं जानता माँ, कौन किसका अपमान करता है। परन्तु इतना विश्वास से कह सकता हूँ कि नीलिमा कभी किसी का अपमान नहीं कर सकती। मेरा वह दो क्षण का परिचय आज जैसे युग-युग का परिचय बन गया है माँ। उसके अन्दर-बाहर जो कुछ है सब स्पष्ट होकर मेरे सन्मुख आ खड़ा हुआ है। एक बार उसे परखकर देखो, वह क्या है, इसे तुम स्वयं जान जाओगी। नहीं माँ, एक बार तो तुम्हें उसे लाना ही होगा। मैं तुम्हारे पांव पड़ता हूँ मां।' कहते-कहते माथा हरीश ने मां के पांवों पर रख दिया।

माँ दो पग पीछे हटकर उलाहना देने लगी। 'चल हट रे कैसा पागल लड़का है, कितनी भूमिका बाँधकर यह नाटक खेलने मेरे पास दौड़ आया है, चल भाग यहाँ से।' तभी ममता से मुस्कराती माँ अपने कमरे की ओर चली गई।

× × +

ठन्डी ठन्डी समीर सूर्य के स्वर्णिम किरण-केशों को प्यार से थपथपाने लगी, जिससे मुग्ध हो उन्होंने अपनी समस्त रूपराशि धरणि पर बिखेर दी। मृतःप्राय विश्व में एक बारगी फिर से जीव का संचार होने लगा। मधुमास का मनहर प्रातः आज कुछ अधिक मधुरिमा समेटे और सुखद बन गया। तभी माँ नीलिमा की कोठी के सामने कार से उतर पड़ी।

नीलिमा अभी सोकर उठी थी, सूर्य की एक स्वर्णिम किरण खिड़की को लाँघकर उसके पांव पर आकर अठखेलियां कर रही थी. बयार के आतुर झखोरे बार-बार उसके आँचल को उड़ा ले जाना चाहते थे। एक सजीव सी नवीनता आज अनजाने में ही उसके प्राणों में भर उठी! जिसने दो पल को उसे मुग्ध बना दिया।

तभी माँ को देख वह आश्चर्य से बाहर आ खड़ी हुई, बोली, 'आपकी पग-धूलि मेरे घर पर पड़ी माँ, इसे अपने सौभाग्य के सिवा और क्या समझूँ। नहीं, घबराइये नहीं, आज आपके पांव छूकर आपको अपवित्र नहीं करूँगी। लीजिये यहीं से प्रणाम किये लेती हूँ,' कहकर नीलिमा ने दोनों हाथ जोड़ दिये।

नीलिमा के कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे थे। उसके बाल छितराकर इधर-उधर बिखर पड़े थे! नयन उनीदें होकर अधखुले हो गए थे। नीलिमा के इस रूप ने आज माँ पर एक मोहिनी सी बिखेर दी। दो क्षण को वह मुग्ध हो उसकी ओर देखती रह गई। फिर आगे बढ़कर नीलिमा का माथा चूम लिया और सहस्रों आर्शीवाद दे डाले। बोली, 'अच्छी हो बेटी, उस दिन तुम अपनी माँ से अनजाने में ही रूठकर चली आई तो मन दुखने लगा! इसी से आज स्वयं तुम्हें मनाने आगई हूँ! हरि कहता था मैंने तुम्हारा अपमान किया है! मैं तो नहीं जानती, अनजाने में ही अपनी बेटी को कैसी उलाहना मैंने दे दी है। परन्तु यदि सचमुच ही मान अपमान का कोई कान्ड हो गया है तो हम दोनों माँ-बेटी मिलकर उसे निपटा लेंगी! बोलो, क्या मुझसे अब भी रूठी रहेगी बेटी।'

'मैं क्या रूठने लगी माँ, रूठने का मुझे अधिकार भी क्या है।' नीलिमा का अभिमान बना रहा, कहने लगी, 'आपको

कहाँ बैठाऊँ माँ, यहाँ की तो समस्त वस्तुएँ अपवित्र हैं, आपका शरीर दूषित हो जायगा उसी का भय है।'

माँ पास पड़े सोफे पर बैठ गईं। नीलिमा को खींच कर अपने पास बैठा लिया। स्नेह से हँसकर कहने लगी, 'मुझपर अबतक क्रोध बना है नीलिमा, माँ पर क्रोध करके कितने दिन रह सकोगी तुम। माँ से मान दिखाना तो तेरी जैसी सुन्दर लड़की को शोभा देता नहीं! आज मैं तुम्हें लेने आई हूँ बेटी, क्या एकबार यह विद्रोह की भावना त्याग नहीं सकोगी।'

निलीमा को बड़ा विचित्र लग रहा था। एक दिन वह था जब माँ ने उसका इस प्रकार अपमान कर उसके सामने से उठकर चल दी थीं, उन्हीं का यह कैसा विचित्र परिवर्तन है, यह कैसी दया, ममता है। लाख प्रयत्न करने पर भी वह समझ न सकी! बोली, 'घृणा और उपेक्षा की चट्टानों से जो मार्ग सदा के लिये बन्द होगया है, वह कैसे खुल सकेगा माँ।'

'वह पलभर की उपेक्षा क्या जीवन भर की भूल बन जायगी बेटी। जीवन में एकबार जिसकी उपेक्षा की है, क्या वह उतना घृणित, इतना उपेक्षित हो जायगा कि कभी उस पर प्यार उमड़ ही नहीं सकता! एक दिन घृणा लेकर जिस मार्ग को बन्द कर दिया था नीलिमा, आज ममता लेकर फिर उसे खोलने आई हूँ! बोलो चलोगी मेरे साथ।'

तब मन्त्र-मुग्ध सी नीलिमा केवल कह सकी, 'चलूँगी माँ।'

७

रात्री का घोर स्तब्ध अँधियारा घना होकर चहुँओर घुमड़ने लगा। नन्हें-नन्हें सहस्रों तारक छिटककर दूर-दूर तक अनन्त नीलाकाश पर फैल गये। बस्तियों से दूर वह घना जङ्गल और घना बनकर भयङ्कर हो उठा। थकी सी बयार मृत:प्राय हो धीमे-धीमे उसाँस भरने लगी – नीरव, अलसाई सी उसाँस। पक्षी विश्राम के हेतु अपने नरम-नरम घोंसलों में मौन हो सो गये। निस्तब्धता में समाया सा घोर शून्य शाँय शाँय कर हँसने लगा। तभी दो काली छायायें अपने को गहन जङ्गलों में छिपाये काँटे-व्रत झाड़ियों को लाँघती, धीमे-धीमे चुपचाप बढ़ने लगी, अँधियारे में समाई सी।

सहसा पास के वृक्ष से कोई विरहाकुल पक्षी 'बाँय' करके उड़ गया। एकबारगी एक छाया चौंककर रुक गई, फिर दूसरी छाया से जा सटी और उसी प्रकार चलने लगी। बहुत देर पश्चात उसने पूँछा, 'अभी और कितना चलना होगा नीरेन बाबू।'

'कुछ कहा नहीं जा सकता नीलिमा, पुलिस को हमारे स्थान का पता चल गया है, उन्होंने छापा मारा है, कहीं भी समय मिलने पर सभा हो सकती है, शायद नहीं भी हो सके।'

कपड़ों की मिलों में एक मास से हड़ताल चल रही है। सहस्त्रों मजदूर बेकार बैठे हैं। खूब पकड़-धकड़ हो रही है। नीरेन के कई साथियों के नाम वारन्ट हैं, पुलिस उनकी खोज में है क्योंकि वह रोटी माँगते हैं, जीने का अधिकार माँगते हैं। इसीसे आज इस जङ्गल में सभा करने की व्यवस्था की गई थी। परन्तु उनके स्थान का पता चल गया और पुलिस ने छापा मारा। इन लोगों को पहले ही सूचना मिल गई, इसीसे कोई गिरफ्तार न हो सका।

तभी नीलिमा कहने लगी, 'आज एक बात पूँछती हूँ नीरेन बाबू।'

'पूँछो।'

'विश्व के इतने बड़े पूँजीवाद को, उसकी इतनी विशाल शक्ति को आपका यह संगठन डिगा सकेगा, क्या इस बात पर आप सचमुच ही विश्वास करते हैं।'

'करता हूँ सम्पूर्ण हृदय से करता हूं नीलिमा। यह बात मेरे हृदय से कभी भी ओझल नहीं होती कि विश्व में ऐसे असंख्य व्यक्ति हैं जो पशुओं से भी गया बीता जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन्हें मनुष्य का जीवन देना ही मनुष्यता का एक मात्र धर्म है। इतना अनोखा सत्य मेरे हृदय में न रहता तो मेरा यह व्रत कभी का भंग हो गया होता। परन्तु एक बात कहता हूँ, विश्वास हुये बिना इस मार्ग पर कभी मत आना, नहीं तो संशय के कारण तुम्हारा कर्त्तव्य बोझ सा हो उठेगा। विश्व में और भी अनेक कल्याणकारी शान्तिमय मार्ग हैं।

जिस पर भी तुम्हारी श्रद्धा है तुम उसी मार्ग को अपनाना नीलिमा।'

'आज मैं अपनी चिन्ता लेकर शहर से दूर इन जङ्गलों में नहीं आई हूँ नीरेन बाबू। उसका भार मैंने आप पर ही छोड़ दिया है। परन्तु फिर भी पूँछती हूँ कि यदि आज आपके साथी गिरफ्तार हो जाते तो क्या उनपर अत्याचार नहीं होते ? क्या क्रान्ति की भावना को सदा के लिये उनके हृदय से निकालने के लिये भाँति-भाँति से उनका दमन नहीं किया जाता। मैं पूँछती हूँ, इतने सबल पूँजीवाद, इतनी बड़ी राजशक्ति के सम्मुख आपका यह फल है कितना सा। उस महान शक्ति के सम्मुख आप अपने बल की परीक्षा करना चाहते हैं तो क्या अनेक किसान मजदूरों को भेड़-बकरियों की भाँति बलि दे देना ही आपका ध्येय है।'

'केवल कुली-मजदूरों की भलाई करना ही मेरा ध्येय नहीं है नीलिमा ! उसके पीछे एक बहुत बड़ा लक्ष्य छिपा है। आप आदमियों की बात कहती हैं तो आदमी हैं ही कहाँ। जिन्हें तुम अपने चारों ओर देखती हो, यह सब जानवर ही तो हैं। और क्रान्ति शान्ति नहीं है नीलिमा। उसके लिये त्याग की भी आवश्यकता पड़ती है। एक बार योरोप की तरफ देखो। हँगेरी में भी क्रान्ति हुई है, रूस में ही बार बार ऐसा ही हुआ है। फ्रान्सीसियों की क्रान्ति आज भी इतिहास में अमर बनी हुई है। बिना लड़े मनुष्य मनुष्य का रास्ता कभी नहीं छोड़ता नीलिमा।'

'जानती हूँ, सब जानती हूँ, परन्तु क्या अपने ही देशवासियों के रक्त से अपने ही देश की भूमि सींचना चाहते हैं आप ? क्या इसके बिना किसी भांति चल ही नहीं सकता।'

'जरूर चाहता हूँ। मानव की रक्तधार यदि मानव के लिये सचमुच ही मुक्ति का मार्ग बन जाय तो जरूर चाहता हूँ नीलिमा। 'शान्ति' शब्द युगों से सुनता आ रहा हूँ, परन्तु जानती हो इस असत्य का कौन लोग प्रचार करते हैं। वही जो ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में सुख का जीवन व्यतीत किया करते हैं। उन्होंने 'शान्ति' शब्द हमारे कानों में इतनी बार जपा है कि अशान्ति सुनते ही हम सोचने लगते हैं, यह अमंगल है, अनर्थ है, पाप है! केवल इसीलिये मेरे सन्मुख क्रान्ति का ही मार्ग खुला रह गया है। मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ, कि केवल क्रान्ति कल्याण का मार्ग है। तुमने तो उनके अनेक दोष-गुण देखे हैं, परन्तु क्या कभी उनकी विलासकारी भूख का परिणाम भी देखा है? क्या कभी सोचा है प्रतिदिन कितने व्यक्ति ज्वर, ठंड और क्षुधा से पीड़ित होकर मर जाते हैं? क्या तुमने कभी माँ को बच्चों पर अहार करते देखा है, क्या कभी दूध के अभाव से बच्चों को तपड़ते देखा है? नीलिमा! मेरे हृदय की आग तो केवल दो ही बातों से बुझ सकती है, या तो मेरे अपने रक्त से या किसी दिन सुन लेने से कि पूँजी-वाद का शोषण, अत्याचार, दमन, आज एक साथ ही जल-कर भस्म हो गया है।

नीलिमा आतुर हो उठी, 'धनवान होने के कारण मुझे गलत न समझ बैठना नीरेन बाबू, परन्तु अपना सारा अपराध पूँजीपतियों के सर मढ़कर ग्लानि करना ही यदि आपका आदर्श है तो वह आदर्श खुशी से मैं अपने सर नहीं ले सकूँगी। मन में इतना द्वेष भरकर आप पूँजीपतियों का अनर्थ कर भी सकें, परन्तु इससे किसान मजदूरों का कदापि कल्याण नहीं हो सकता, यह मैं निश्चय रूप से कह सकती हूँ।'

नीलिमा का यह रूप नीरेन के सम्मुख अपरिचित था।

दो क्षण को वह मूक होकर रह गया। नीलिमा पूछने लगी,' उत्तर क्यों नहीं देते नीरेन बाबू मैं कहती हूँ हृदय में घृणा की इतनी आग जलाकर आप चाहे जो भी करें, देश की भलाई नहीं कर सकते।'

नीरेन धीरे से कहने लगा, 'मैं नहीं जानता नीलिमा, कौन किस प्रकार देश की भलाई कर रहा है परन्तु इतता जानता हूँ कि जो मेरा लक्ष्य है उससे प्राण रहते मैं कभी विमुख नहीं हो सकूँगा।'

नीलिमा सन्न रह गई। कहने लगी, 'कारखानों के मजदूरों की अवस्था तो मैं स्वयं देख आई हूँ। उनका पाप, उनकी अशिक्षा, उनकी पशु जैसी अवस्था, यदि जीवन में कभी भी किसी का तनिक सा भी प्रतिकार कर सकी तो उससे बढ़कर मेरे लिये सार्थकता और हो ही क्या सकती है। आपके साथ रहकर इतना तो अवश्य जान गई हूँ कि एक दिन उनकी दशा अवश्य सुधरेगी। तब विश्व की कोई भी शक्ति उनके मार्ग में दीवार बनकर नहीं खड़ी हो सकेगी। इसीलिये आज प्रार्थना करती हूँ जीवन के किसी भी क्षण में मुझे गलत मत समझ बैठना।'

नीरेन चुप रह गया। इससे आगे कहने को मानों कुछ रह नहीं गया।

वहुत देर बाद नीलिमा ने कहा, 'मैं बहुत थक गई हूँ नीरेन बाबू, क्या थोड़ी देर कहीं बैठा नहीं जा सकता।'

'पास ही एक निरापद स्थान है, वहाँ कोई भय नहीं है, इन लोगों से अब बहुत दूर आ निकले हैं।'

थोड़ी दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे दोनों पास-पास बैठ गये। निस्तब्धता के कितने ही क्षण बीत गये और जाने

कितनी देर दोनों वैसे ही चुपचाप पास-पास बैठे रहे। एक शून्य समेटे विचारों की तन्द्रित-सी छाया ने उन्हें आ घेरा।

बहुत देर बाद नीरेन ने पूँछा, 'आज की यह घनी अँधियारी बड़ी भयङ्कर लग रही होगी नीलिमा।'

'परन्तु भयङ्करता से आज भय नहीं लग रहा है नीरेन बाबू, जानते हैं क्यों ?'

'क्यों नीलिमा।'

'शायद आप साथ हैं, इसीलिये।'

नीरेन के हृदय से एक धीमी-सी उसास निकल गई। रात्रि के इस घने अँधियारे में जाने नीलिमा उसे देख-सुन भी पाई या नहीं ! तनिक देर चुप रहकर वह कहने लगा, 'मेरे अपराध एक बार क्षमा नहीं कर सकोगी नीलिमा। मैंने कभी किसी भी क्षण में तुम्हें समझ नहीं पाया, अब कुछ समझने का प्रयत्न किया है तो उन बातों को यादकर मन क्षोभ से भर उठा है।'

'अभी एक ही मास तो आपके साथ कार्य करते हुआ है नीरेन बाबू, प्ररन्तु इतने ही अल्प समय में आपके प्रति कैसा भारी विश्वास मेरे हृदय में जम गया है, यही सोच कर समय-असमय मुझे आश्चर्य हुआ करता है। आज मैं विश्वास से कह सकती हूँ कि आपने कभी कोई अपराध नहीं किया; असत्यता कभी आपमें पनप नहीं सकती। मैं नहीं जानती आपने क्या किया है परन्तु जो भी कभी किया होगा सत्यता से प्रेरित होकर ही किया होगा !' कहकर नीलिमा आकाश की ओर देखने लगी और नीरेन के हृदयांगन में कितने ही विचार आकर खड़े होने लगे, इन्हीं में एकबारगी वह लीन होकर रह गया। कितनी ही देर एक शून्य घुमड़-घुमड़ कर दोनों के मन में समाता रहा ! तब नीरेन बोला,

आज यह गम्भीर शून्य कुछ अच्छा नहीं लग रहा है नीलिमा, न हो एक गाना ही गाओ !'

धीमे-धीमे नीलिमा गाने लगी, :—

'जब हृदय में जाग उठी रे !
जीवन की मधु ज्योति।'

नीलिमा का मधुर स्वर चहूँओर फैलकर उठने लगा, जिसे मूक, मुग्ध होकर नीरेन सुनता रहा। नीलिमा के मधुर स्वर ने एक विचित्र सी मोहनी आज उसके अंग-प्रत्यं पर बिखेर दी जिससे मंत्र-मुग्ध सा वह अवाक रह गया। एक आह्लाद और प्रेरणा से उसका मन एकबारगी रोमान्चित हो उठा।

गाना समाप्त होने पर नीलिमा मुस्कराकर पूछने लगी, 'कैसा लगा नीरेन बाबू !'

अटूट निद्रा से मानों नीरेन को किसी ने झकझोर कर जगा दिया। घोरचिन्तन में खोकर जैसे वह कहने लगा, 'आप की यह कृपा और आज के थोड़े से यह मधुर क्षण जीवन में कभी नहीं विसरा सकूँगा। नीलिमा आज की यह गम्भीर रात्री चिरकाल तक मेरे एकमात्र आनन्द का विषय बनी रहेगी।'

'बस केवल इतना ही याद रह सकेगा और कुछ भी नहीं।' नीलिमा का स्वर मानों अपने में ही घुटकर समाप्त हो गया। एक धीमी सी उसाँस उसके अधरों पर फैलकर अनजाने में ही उस शून्य के झुरमुट में विलीन हो गई ! उसे लगा मानों यह पत्थर है। दया-माया, ममता-मोह उसमें कुछ भी नहीं रह गया।

फिर दोनों रह गये निस्तब्ध मानों मृत्यु की उदासी छा गई हो जो टूट पड़ना ही नहीं चाहती, जो एक गूढ़ रहस्य बनकर रह जाना चाहती है।

तभी सूर्य की प्रथम किरण ने विश्व को आलोकित कर दिया। पक्षी वृक्षों की डालियों पर झूल-झूल कर नव प्रभात का गीत गाने लगे। क्षितिज के पीछे से काले-काले मेघों का झुरमुट उमड़कर नीलाकाश को ढकने लगा। ठन्डी बयार के झकोरों से एक बार काँप कर नीलिमा चौंक गई, 'ओह, बड़ी ठन्ड है।'

जैसे स्वप्न से नीरेन जाग पड़ा, 'आपने तो अधिक पहना भी नहीं है, लीजिये मेरी शाल ओढ़ लीजिये। हवा में नमी बढ़ती जा रही है।'

'रहने दीजिये नीरेन बाबू, आपको व्यर्थ में कष्ट होगा।'

'कष्ट नहीं, मुझे सुख मिलेगा नीलिमा, लो ओढ़लो इसे।'

नीरेन ने शाल नीलिमा को दे दी। तभी वह उठ खड़ी हुई, 'अब चलना चाहिये नीरेन बाबू. सभा शायद अब नहीं हो सकेगी।'

'हाँ चलो!' नीरेन उठकर खड़ा होगया।

८

तीन मास की निरन्तर हृदय-पीड़ा से हरीश उठा तो केवल क्षीण-नर-कंकाल सा रह गया। डाक्टरों ने पहाड़ पर जाने की राय दे डाली। जाना तो होगा ही, हरीश के ऐसे स्वस्थ्य शरीर की यह दशा देखकर दुख लगता है! माँ भी साथ जा रही हैं। नीरेन कहने लगा, 'मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा हरीश।'

हरीश उसके पाँव पर झुक गया, 'नहीं भैया, तुम्हारा आर्शीवाद तुम्हारी स्नेह छाया मेरे साथ रहेगी तो कभी मेरा कुछ भी अनर्थ नहीं हो सकेगा। यहाँ अभी कितना कार्य बाकी पड़ा है, तुम्हारे बिना क्या क्षण भर भी वह चल सकेगा। समय कितना कठिन है, नित्य गिरफ़्तारियाँ हो रही हैं, मजदूरों के सिर फोड़े जा रहे हैं उनमें फूट डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। केवल तुम्हारे न रहने से उनकी आज एकता, आज का संगठन टूट कर बिखर नहीं पड़ेगा! यदि एक बार उनका संगठन टूट गया तो फिर कौन उनकी

रोटी के लिये आवाज बुलन्द करेगा, कौन उनके अधिकारों की मांग करेगा। उनकी आँखें आज तुम्हारी ओर आशा से देख रही हैं, फिर तुम्हीं बताओ भैया, तुम्हें साथ ले जाकर ईश्वर के समक्ष मैं अपराधी नहीं होऊँगा क्या।'

स्नेह से गद्‌गद् होकर नीरेन मुस्कराने लगा। एक क्षण को अतुल आनन्द से उसका मन भर उठा बोला, 'अरे, ईश्वर पर तू कब से विश्वास करने लगा हरि।'

आश्चर्य से हरीश नीरेन की ओर देखने लगा, 'ईश्वर की अवहेलना तो मैंने कभी नहीं की भैया। केवल उसी ईश्वर पर विश्वास रखकर तो मनुष्य विश्व में दृढ़ होकर चल सकता है, नहीं तो कहाँ ठिकाना है उसका।'

'माँ से उस दिन का तुम्हारा विद्रोह मैं भूला नहीं हूँ हरि।'

'माँ से मैं विद्रोह करूँगा भैया। ऐसी शक्ति तो मुझ में नहीं है। माँ के सामने सशक्त होकर भला पलभर भी मैं खड़ा रह सकूँगा। माँ से तो मैंने कभी विद्रोह नहीं किया। विद्रोह हाँ किया था उनके धर्म से—समस्त विश्व के धर्म से जो ढकोसला है, छल है, जो निरन्तर हमें छलता जा रहा है, हमें निशक्त बनाता जा रहा है। केवल धर्म को लेकर ही आज कितने रक्तपात, कितने अमानुषिक कार्य हुआ करते हैं। समस्त विश्व के समाज को आज इतने स्वार्थ का, घृणित सा समाज बनाकर छोड़ दिया है। एक मनुष्य की स्वार्थपरता ने सारे समाज को वेदना के गहरे गर्त में डाल दिया। उसी के प्रति मेरी घृणा है, मेरी वेदना और विद्रोह।' कहते-कहते हरीश के नयन-कोरों में दो अश्रु झलककर सूख गये।

गर्व-मिश्रित आनन्द से नीरेन अवाक उसकी ओर देखता रह गया।

तभी आ पहुँची नीलिमा ! कहने लगी, 'क्या मैं भी आपके साथ नहीं चल सकती हरीश बाबू ।'

'आप चलना चाहती हैं नीलिमा ।'

'यहाँ रहते-रहते मन बहुत भारी हो उठा है हरि बाबू । अन्तर में जाने कैसी वेदना घुमड़कर भर गई है । आपके साथ यहाँ से दूर कुछ दिन व्यतीत हो जायँगे तो मन हल्का हो जायगा । फिर आपकी सेवा का भार अपने ऊपर ले सकूँगी, यह कोई कम सौभाग्य और आकर्षण की बात नहीं है !' माता की ममता सी नयनों भरे नीलिमा स्नेह से हरीश को निहारने लगी ।

हरीश रह गया जैसे सुख की निद्रा में लीन, 'आप सब लोग मुझे चारों ओर से घेरकर क्या पाप के गढ़े में ढकेल ही देना चाहते हैं नीलिमा । आप जानती हैं कितना संगठन अभी हमें करना है । नीरेन भैया की मुझे चिन्ता नहीं । समस्त संसार के विरुद्ध अकेले खड़े होकर वह अपनी आवाज उठा सकते हैं । इतनी शक्ति उनमें है । परन्तु अन्य लोगों को तो आप ही बटोरे हैं । उन्हें तो आप ही शक्ति प्रदान करती हैं । आप ही से तो वह प्रेरणा पाते हैं । जितना संगठन आज हम लोगों का हुआ है उतना पहले कभी नहीं हुआ । इसी से बरबस आप के सन्मुख आदर से सीस झुकाना पड़ता है । फिर बताइए तो आप के चले जाने पर कौन उसे उत्साह प्रदान करेगा ।'

उसी दिन हरीश चला गया । नीलिमा नहीं जा सकी ।

यही सब सोचता-सोचता नीरेन रात्रि की निविड़ता में बहुत देर तक जागता रहा ! आज एक विचित्र सा शून्य उसके हृदय में भर उठा ! उसे लगा जैसे अतीत और वर्तमान एक

बिन्दु की भाँति उसके सम्मुख आकर नाँच रहे हों! उसकी सुखद और दुखद, समस्त भावनाओं का एकीकिरण होकर उसके सम्मुख खड़ा हो। जैसे वह 'एक' रह गया है, विश्व से दूर, बिलकुल अकेला। आँखें गड़ाये वह आकाश की ओर देखने लगा! अनन्त नील-नभ के असंख्य झिलमिल करते तारक आज उसे पास-पास सट कर खड़े होते दीखने लगे। एक काली सी अनजान छाया उसके पास आकर बैठ गई, बिलकुल सट-कर, और प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरने लगी। थपकियाँ दे देकर उसे सुलाने का प्रयत्न करने लगी। अरे, कैसा रोमान्च-कारी है उसका यह स्पर्श, कैसी मधुर है यह अज्ञात छाया। एक पुलकभरे आनन्द से उसका मन भर उठा। शून्यता में घुमड़ते उस नीलाकाश ने एक मोहिनी-सी उस पर बिखेर दी। उस शान्ति के गम्भीर रहस्य को एकबारगी वह समझने का प्रयत्न करने लगा। एक नवीन सी सिहरन उसके कण-कण में व्याप्त गई। कैसा विचित्र यह सम्मोहन है! आज अचानक यह कैसी विचित्र घटना उसके जीवन में घट गई। यह कैसा अनोखा अनुभव आज उसके जीवन में समा गया! आज किसी अज्ञात शक्ति ने अपने ममतामयी आंचल से उसका कण-कण ढक दिया, जिसके मद में मदहोश हो वह एकबारगी स्वयं में ही खो बैठा।

जाने कितनी देर इसी प्रकार वह उन स्वप्न से स्वर्ण तारों पर अपने हृदय की समस्त आकांक्षा समेटे चढ़ता उतरता रहा और फिर जाने कब निद्रा के आंचल में लीन हो गया।

९

सुबह उठा नीरेन तो तन आग सा जल रहा था। माथे में जोर की पीड़ा होने लगी। शरीर मानों टूटकर गिर पड़ेगा। एक बार उसने उठना चाहा, परन्तु पाँव काँप गये और वह वहीं बिस्तर पर गिर पड़ा। फिर उससे उठा नहीं गया। धीरे-धीरे ज्वर बढ़ने लगा और फिर जाने कब उसे मूर्छना ने आ घेरा।

पल बीतते गये, बीतते गये, परन्तु उसकी मूर्छना नहीं टूटी! बेसुध सा अकेला वह पड़ा रहा चुपचाप! जाने कितने समय बीत गया और इसी अबाध समय की अवधि में जाने कितनी मान्य-अमान्य घटनायें घटीं, उस दिन नीरेन के लिए यह अज्ञात ही रह गया।

रात्री की ठण्डी वायु उसके शरीर पर प्यार से थपकियाँ देने लगीं। उन स्नेह रूपीथपकियों से नीरेन का ज्वर कुछ कम हुआ। धीमे-धीमे उसने आँखें खोलीं। रात्रि के अँधियारे में एक बार चौंक कर वह उठ बैठा, नीलिमा पास ही कुर्सी पर

बैठी, उसके मुख की ओर तन्मयता से आँखें गड़ाये निहार रही थी।

नीरेन को उठता देख स्नेह से उसका हाथ पकड़ कर पूँछ बैठी, 'अब कैसा मन है नीरेन बाबू ?'

नीरेन को आश्चर्य लग रहा था। नीलिमा की बात जैसे उसने सुनी नहीं, कहने लगा, 'इतनी रात को आप यहाँ नीलिमा।'

नीलिमा गम्भीर बनी रही, 'सुबह आपके पास आइ थी, देखा ज्वर से अचेत पड़े हैं! तन-मनकी कुछ भी सुधि नहीं है! शरीर पर हाथ रक्खा तो आग सा जल रहा था। बड़ी वेदना लगी। तभी जाकर डाक्टर को बुला लाई। ओह, कितना समय बीत गया, तब आपको चेतना लौटी! मुझे तो भय लगने लगा था।' स्नेह से नीलिमा उसकी ओर देखने लगी फिर मानों कुछ याद आया हो, अरे बैठे हैं आप, लेट जाइये न, जरा शीशा सामने रखकर देखिये, एक ही दिन में कितने दुर्बल दीखने लगे हैं।' नीलिमा ने अपने हाथ का सहारा देकर नीरेन को लिटा दिया। फिर चादर उढ़ाकर उसी के पास बैठ गई और स्नेह से उसके बालों पर हाथ फेरने लगी।

नीरेन को लगा जैसे एक निर्बोध, विवश बालक की भाँति उस नीलिमा की ममतामयी गोदी में पड़ा हो जो माता की भाँति प्यार से थपकियाँ दे-दे कर उसके समस्त दुख दर्द हर लेना चाहती है। उसे लगा जैसे नीलिमा की गोदी में उसे कोई भय नहीं है। स्वयं ईश्वर भी उसका कोई अनर्थ नहीं कर सकते। आज नीलिमा की इस ममता ने उसे आश्चर्य-चकित कर दिया। छैः मास पहले की उस नीलिमा की वह आज की नीलिमा से

तुलना करने लगा। एक ही नारी के यह कैसे दो रूप हैं। एक वह नीलिमा थी क्रोध में भरी-भरी, अभिमानिनी नीलिमा, जो सदा कठोर होकर चलना जानती थी, कभी पिघलना नहीं जानती और एक यह नीलिमा है, ममतारूपी नीलिमा, जिसमें माँ का दयाद्र हृदय है, दुनिया भर की वेदना है !

सोचते-सोचते उसके नयन सजल हो उठे। कृतज्ञता भरे आनन्द से वह नीलिमा की ओर देखने लगा। फिर बहुत देर बाद जाने कैसे स्वर में बोला, 'आप मेरे लिये अबतक जागकर कष्ट सह रही हैं नीलिमा, इसका आभारी मैं जीवन भर रहूँगा ! जीवन के किसी भी क्षण में आज की यह बात मेरे मानस-पटल से विस्मृत नहीं हो पायेगी।'

'आभारी रहने, न रहने की आपकी अपनी बात है नीरेन बाबू, उसमें मैं बाधा नहीं दूँगी, परन्तु जागते रहने से मुझे कष्ट नहीं होता, कष्ट होता है आपके दूरत्व से।' एक वेदना भरी उसाँस नीलिमा के मुख से निकल गई।

'कैसा दूरत्व नीलिमा।' नीरेन को आश्चर्य लगा।

'आप ज्वर की पीड़ा से अचेत हो गये, फिर भी मुझे अपनी सेवा का भार सम्भाल लेने को बुला न सके, यही एक बात आज बार-बार मन में खटक रही है।'

'अधिक मैं नहीं कहूँगा नीलिमा, परन्तु यदि दूरत्व आपमें मानता तो आपका इस समय यहाँ बैठे रहना कभी सहन नहीं कर सकता। जीवन में मैंने कभी किसी का सहारा नहीं चाहा। सुख में, दुख में सदा अकेले रहकर ही मैं चलना चाहता हूँ ! परन्तु आज तुम्हारे इस स्नेह का, सहयोग का तनिक भी प्रतिवाद मैंने नहीं किया ! बताओ नीलिमा, मेरे मन की यही भावना क्या हमारे दूरत्व को घोषित करती है।'

नीलिमा को शायद विश्वास नहीं हुआ। प्रतिवाद करती हुई कहने लगी, 'आप जैसा व्यक्ति जो जीवन में सदा ही नारी से दूर रहा है, कभी नारी के समीप पहुंचने का जिसने प्रयास नहीं किया, कभी उसे पहचान नहीं सकेगा नीरेन बाबू, पहचानकर भी कभी उस पर श्रद्धा नहीं रख सकेगा। नारी की ममता को, उसकी शक्ति को वह सदा ही अस्वीकार करता रहेगा। यह बात मैं विश्वास से कह सकती हूँ।'

नीरेन ने विरोध नहीं किया। वह चुपचाप लेटा रहा। एक स्फुट सी मुस्कान उसके अधरों पर फैलकर अदृष्य हो गई, जाने नीलिमा की अज्ञानता पर, या उसके अभिमान पर!

तभी नीलिमा जैसे सचेत हो उठी, 'आप अधिक बोलिए नहीं, चुपचाप लेटे रहिये! अधिक बोलने से दुर्बलता और बढ़ेगी। नींद नहीं आये तो कहिए थपकियाँ देकर आपको सुला दूँ। माँ ने तो कभी आपको थपकियाँ देकर सुलाया नहीं, उस स्नेह से तो आप सदा वंचित ही रहे हैं, इसीसे आप उसका महत्व नहीं समझेंगे!'

नीलिमा थपकियाँ देकर उसे सुलाने लगी। तनिक सी देर में ही वह सुख की निद्रा में लीन हो गया।

दूसरे दिन पुनः ज्वर बढ़ने लगा, बढ़तागया, बढ़ता गया। नीरेन अचेत हो गया। नीलिमा चिन्ता से कांप उठी। डाक्टर आये, दवाईयां चलने लगीं। नीलिमा जैसे तन-मन की सुध विसरा बैठी। निरन्तर परिश्रम से उसकी सेवा में लग गई। नयनों की निद्रा उसकी भाग गई। विश्राम उसका छूट गया।

पल भर को उसे चेतना लौटती। कितने ही शब्द अचानक अधरों पर आकर अटक जाते, फिर दूसरे ही क्षण अचेत हो जाता! इसी प्रकार दीर्घ, विशाल से दो दिन बीत गये।

तीसरे दिन ज्वर कुछ घटने लगा। कोलाहल शून्य रात्रि का समावेश होते-होते नीरेन ने आंखें खोल दीं। नीलिमा उसके पास ही पलंग पर बैठी थी। एक प्रेरणा सी नीरेन के अन्तर में भरने लगी। एक अदृश्य सी शक्ति अनजाने में ही उसमें व्याप्त गई। अपलक वह नीलिमा की ओर देखने लगा। तीन दिन की मैली धोती पहने बैठी है नीलिमा। नींद से भरी आंखें उसकी उनींदीं हो गई हैं, अलकें अस्त-व्यस्त होकर कपोलों पर छितरा गई हैं। कितनी मधुर है यह नीलिमा, कितनी अच्छी है! ममता भरी कृतज्ञता से नीरेन उसकी ओर देखने लगा। मुस्कराकर बोला, 'आज प्रथम बार जान सका नीलिमा कि नारी ईश्वर से भी युद्ध कर सकती है। युद्ध करके उसे परास्त कर सकती है।'

नीलिमा हँस पड़ी, 'ईश्वर भी कुछ होता है नीरेन बाबू।'

'इतना भी अनुभव क्या आपको नहीं हुआ नीलिमा! इन दो तीन दिनों की अवधि में मृत्यु की काली छाया क्या मेरे मुखपर आपको नहीं दीख पड़ी और उसी के पीछे क्या कहीं नहीं दीख पड़ा आपको वह परम परमात्मा।'

नीलिमा सहसा गम्भीर हो उठी। उपहास की धीमी सी हँसी उसके अधरों पर प्रस्फुट होने लगी। बोली, आपको प्रायश्चित तो अवश्य करना होगा नीरेन बाबू।'

नीरेन को लगा मानों विश्व भर का व्यंग नीलिमा की उस मुस्कान में भरा है जो अचानक उसके सम्मुख खड़ा होकर उससे भयङ्कर परिहास कर रहा है। वेदना से उसका मन आच्छन्न होने लगा। आश्चर्य से पूँछा, 'कैसा प्रायश्चित नीलिमा।'

'एक दिन आपकी माँ को मेरे छू जाने से अपवित्र होने का भय लगा था, उसी के गर्व में वह मेरा अपमान करना भी

नहीं भूली थीं। आप भी तो उन्हीं माँ के लाड़ले लड़के हैं न! इन दो तीन दिनों में मैंने आपकी समस्त वस्तुयें छूकर अपवित्र कर दी हैं। उसी के लिये प्रायश्चित करने को कहती हूँ।' एक बार वह फिर शुष्क सी हँसी हँस उठी।

नीरेन को लगा जैसे नीलिमा के अन्दर कुछ छिपा है जो बार-बार अभिमान से सामने आ खड़ा होना चाहता है। गर्व से भरा जो कभी सिर झुकाना नहीं चाहता गम्भीर बना वह कहने लगा, 'हाँ, प्रायश्चित तो करना ही होगा नीलिमा।'

'कीजियेगा न,' इस बार व्यङ्ग की मात्रा बढ़ गई। नीलिमा खिलखिला करके हँस पड़ी। नीरेन को लगा जैसे वह परास्त हो गया हो। उसी भावना से वह कहने लगा, 'जानती हो नीलिमा, क्या प्रायश्चित होगा मेरा!'

'जानने की उत्सुकता नहीं है नीरेन बाबू, संसार में अनेक व्यर्थ बातें भी हैं, जिन्हें मैं कभी जानना नहीं चाहती।'

'परन्तु जानना आवश्यक है नीलिमा, तुम्हें भी तो मेरे प्रायश्चित में साथ देना होगा न।'

'क्षणिक वस्तुओं के साथ कभी मेरा सम्बन्ध नहीं हो सकता नीरेन बाबू, इस बात का आज आपको विश्वास दिलाए देती हूँ।'

एक नीरव सी उसाँस नीरेन के हृदय से निकल गई, 'हाँ, आप जैसी नारी के लिये, आपके समाज के लिये आत्मा का पतन कोई दूषित कार्य हो, इसकी कल्पना भी कैसे की जा सकती है नीलिमा।'

'मेरे अभिमान को ठेस लगती है नीरेन बाबू। आपके यह व्यङ्ग असहनीय हो उठे हैं, आप आज्ञा दें तो मैं जा सकती हूँ।'

'इसी समय, इतनी रात को।'

'हाँ।'

'जाना ही चाहती हो नीलिमा तो रोकने का मुझे अधिकार नहीं है। परन्तु जाने से पहले इतना कह दूँगा कि आपका अपमान करने का साहस मैं कभी नहीं कर सकता। उस दिन जान-अनजान में जो कह दिया था उसकी पीड़ा भी अबतक हृदय से बिसरा नहीं बैठा हूँ,' कहते-कहते नीरेन सहसा मौन हो गया।

तभी नीलिमा सजग हो गई। स्थिर होकर कहने लगी, 'ओह, अभी आपको दवा पिलानी है, कैसी लापरवाह हूँ मैं भी, बातों में याद ही नहीं रहा।' नीलिमा ने दवा लाकर नीरेन को पिला दी। बोली, 'कितनी रात बीत गई है, अब सो जाइये न, नहीं तो फिर मन भारी हो उठेगा।'

'आप तो चली जाना चाहती हैं नीलिमा, फिर बताओ तो कौन अपनी ममतामयी गोदी में सुलाकर मेरे सारे दुख दर्द हर लेगा!'

जाने कितनी वेदना, कितना शून्य नीरेन के इस कथन से नीलिमा के सम्मुख आ खड़ा हुआ। दया-ममता से उसका मन दयार्द्र हो उठा। 'नहीं मैं नहीं जाऊँगी नीरेन बाबू, मैं कभी जाना नहीं चाहती। आपके प्रति समय-असमय जाने कैसे विरोध की भावना उमड़ आती है। आप सो जाइये, लाइये मैं सुलाऊँ आपको।' कहते-कहते नीलिमा नीरेन के पास ही उसके पलंग पर लेट गई और स्नेह से उसके बालों पर हाथ फेरने लगी!

१०

एक दिन स्वस्थ होकर नीरेन उठ बैठा। आज अचानक उसे अपने कर्त्तव्य का भान हो आया, मन बाहर जाने को उतावला होने लगा! परन्तु नीलिमा रोके रही, 'दो सप्ताह बाद ज्वर से उठे हैं आप कितने दुर्बल हो गये हैं, बाहर घूमेंगे तो फिर ज्वर चढ़ आयेगा।'

नीरेन ने विरोध नहीं किया। वह मूक होकर लेट गया, नीलिमा की ओर अपलक देखने लगा। कैसी यह नारी है; कैसा अभिमान है उसका। यह निर्बोध बालक की भांति कैसे उसकी आज्ञा का पालन करने लगता है। कितना सुख मिलता है उसे उसके सम्मुख समर्पण करने में। जाने कैसी शक्ति है उस नारी में। यही सब जाने कबतक वह सोचता रहा!

तभी नीलिमा धीमे से मुस्कराकर पूछने लगी, 'इन अनिमेष नेत्रों से क्या देख रहे हैं नीरेन।'

नीरेन एकबारगी चौंक उठा, 'कुछ भी तो नहीं नीलिमा।'

नीलिमा मुस्कराती रही, 'सौन्दर्य देख रहे हैं मेरा, सौन्दर्य से सुख मिलता है न !'

'हाँ, बहुत सुख मिलता है, जानता नहीं स्वर्ग कहीं है या नहीं परन्तु यदि कहीं है तो वह सौन्दर्य से भिन्न नहीं हो सकता नीलिमा,' खोया सा नीरेन कहने लगा।

नीलिमा ठठाकर हँस पड़ी, 'उस दिन मुरझाये फूलों में सौन्दर्य की उपेक्षा जो मैंने की थी तो याद है कितना बड़ा उपदेश आपने मुझे दे डाला था। आज आपको उसी सर्वग्रासी सौन्दर्य का पक्षपात करते देख मुझे आश्चर्य लग रहा है नीरेन बाबू।' बहुत देर तक नीलिमा हँसती रही।

नीरेन को व्यङ्ग चुभ गया। अटूट उदासी मन में भरे वह उठ बैठा। गम्भीर होकर कहने लगा, 'एक बात पूँछू नीलिमा सच-सच बताओगी।'

'पूँछिये।'

'क्या जीवन के किसी भी क्षण में आपने किसी से प्रेम किया है।'

'प्यार बिना क्या कोई क्षण भी इस नश्वर संसार में रह सकता है नीरेन बाबू, यही तो एक बन्धन है जो आत्मा को सदा विश्व से बाँधे रहता है।'

'जान सकता हूँ वह कौन भाग्यशाली है नीलिमा।'

नीलिमा मुस्कराने लगी, 'बचपन में क्षणभर को भी माँ की गोदी छोड़ना दूभर हो जाता था नीरेन बाबू, उनको आँखों से ओझल होने पर संसार भार सा लगता था। नियति के कटु प्रहार मन को व्याकुल बना देते थे। परन्तु एक दिन जब वह भी अचानक छोड़कर चली गईं तो वह प्यार फिर मिला

पिता जी से।' तनिक रुककर नीलिमा पूँछने लगी, 'एक बात जानने हैं आप।'

'क्या ?'

'मैं प्रेयसी हूँ पिता जी की, पलभर को भी वह मुझे अपनी आँखों से दूर नहीं होने देते, पलभर भी मुझसे दूर वह रह नहीं सकते। इतने दिनों तुम्हारी परचर्या करती रही तो जाने कितने प्यार भरे उलाहने उन्होंने मुझे दे डाले। उन्हें मैं प्यार करती हूँ नीरेन बापू, बहुत प्यार करती हूँ। पिता जी प्रेमी हैं मेरे अभिन्न प्रेमी।

'क्या पति-रूप में आपने कभी किसी को नहीं पाना चाहा नीलिमा।'

नीलिमा फिर ठठाकर हँस पड़ी, 'आपका अभिप्राय है, दासी बनकर, सेविका बनकर, क्या कभी मैंने किसी को पाना नहीं चाहा। क्या अपने पावों पर स्वयं तुमने कभी कुल्हाड़ी मारनी नहीं चाही।'

'पति तो साथी का रूप होता है नीलिमा, स्वामी का नहीं।'

'नहीं, यह पुरुष का भुलावा है, छल है, जिसमें बाँधकर वह नारी को सदा के लिये अपने आधीन बना लेना चाहता है। युग-युग से नारी भूलती आई है, सदा वह छली गई है। पुरुष के इन प्रलोभनों में फँसकर वह सदा पतन के मार्ग पर चलती रही है। छल-कपट तो पुरुषों की दिनचर्या का एक अङ्ग है नीरेन बाबू।'

नीरेन ने प्रतिवाद नहीं किया, पूँछा, 'यदि यह छल है तो क्या जीवन में तुम कभी नहीं छली गईं नीलिमा।'

'एक बार की बात मैं आपको सुनाऊँ। सारे प्रयत्न पिता

जी ने मुझे छलने के कर डाले थे। पिता जी के एक मित्र थे, उन्हीं का लड़का इङ्गलैण्ड से लौटकर आया था। उसी को वह ले आये। बड़ा आदर्शवादी लड़का था वह। इङ्गलैण्ड से लौटते ही माँस-मच्छी खाना छोड़ दिया, कोट-पैन्ट को तिलांजलि दे दी, विदेशी भाषा से उसे घृणा हो गई। कई दिन वह हमारे यहाँ रहा, एक दिन पिता जी मुझसे पूँछने लगे, 'यह सुधीर तुम्हें कैसा लगा नीलि।'

तो मैंने कह दिया, 'बड़ा अच्छा लड़का है पिता जी, बहुत कम व्यक्ति ऐसे हो सकते हैं।'

पिता जी प्रसन्न हो उठे, 'तुम उससे शादी करोगी नीलि।'

'शादी' मैं चौंक उठी, 'नहीं पिता जी, मैं शादी नहीं करूँगी, जीवन में कभी भी नहीं। आपको छोड़कर मैं कभी किसी पुरुष से प्रेम नहीं कर सकी, कभी कर भी नहीं सकूँगी। मैं सदा आपके पास रहना चाहती हूं, कभी आपकी स्नेह-छाया से दूर रहना नहीं चाहती।' कहते-कहते मैंने उनके गले में बाँह डाल दी, पूंछा, 'आप शादी करेंगे मुझसे पिता जी।'

'पिता जी हंसने लगे। प्यार से उलाहना देते हुये बोले, 'कैसी पगली लड़की है तू नीलि, मानों निरी बच्ची है, नन्हीं सी लड़की।' पिता जी हंसते हुये चले गये।

तनिक देर रुककर नीलिमा फिर बोली, 'हाँ, एक बात बताऊं आपको।'

'बताओ!' नीरेन मुस्कराने लगा। कैसी यह भोली लड़की है उसने कैसी सरलता से अपने हृदय के अन्दर-बाहर का सब कुछ खोलकर नीरेन के सम्मुख रख दिया। यही सोचकर वह आश्चर्य से चकित रह गया।

नीलिमा कहने लगी, 'वही सुधीरबाबू कल फिर आने वाले हैं, पिता जी एक बार फिर प्रयत्न करना चाहते हैं।'

'सुधीर तुम्हें पसन्द तो है नीलिमा।'

'हाँ, लड़का वह बहुत अच्छा है।'

'तो फिर उसी से शादी क्यों नहीं कर लेती।'

'हाँ, सोच रही हूँ, शायद अब ऐसा ही करना पड़े,' स्थिर सी नीलिमा कहने लगी आप स्वस्थ हो गये हैं नीरेन-बाबू, अब मुझे जाना चाहिए।'

'यहाँ पलभर भी ठहरना क्या दूभर हो गया है नीलिमा।'

'अब तक तो नहीं हुआ, परन्तु सोचती शायद अब होने लगे।'

'सुधीर बाबू जो आने वाले हैं। उन्हीं की राह में आँखें बिछाये बैठी हो न।'

नीलिमा मुस्कराने लगी, 'एसा ही समझ लीजिये।'

'एक बात कहूँ।'

'कहिये।'

'मानोगी।'

'प्रयत्न अवश्य करूँगी।'

'जाने से पहले एक बार तुम्हारे हाथ का खाना खाना चाहता हूँ! मेरे प्रति एक भ्रम जो तुम्हारे मन में है, चाहता हूँ कि कभी भी निकलने न पाये! परन्तु लाचार हो जाता हूँ। तुम्हारी उपेक्षा मैं कभी सहन नहीं कर सकता नीलिमा, कभी सहन नहीं कर सकता। बोलो एक बार अपने हाथ से खाना बनाकर मुझे खिला सकोगी।'

'कब ।'

'कल सुबह ही, इसके पश्चात तुम जा सकती हो ।'

'अच्छा ।'

'तुम्हें भी मेरे साथ बैठकर खाना होगा ।'

'अच्छा ।'

नीलिमा सोचने लगी, कैसा है यह नीरेन । अभी-अभी जो इसके छुये जाने से प्रायश्चित करने की बात कह रहा था, वही नीरेन उससे यह कैसी अनुनय-विनय कर रहा है । उसी के साथ बैठकर उसीके हाथ का बना खाना खाना चाहता है । उसका वह आदर्श, वह अभिमान क्या कच्ची भीत पर टिका था जो क्षण भर में ही एक धीमे झकोरे से टूट कर बिखर गया । वह कहने लगी, 'एक बात और कहूँगी नीरेन बाबू ।'

'कहो ।'

'हरीश बाबू, आपकी जो इतनी प्रसशां किया करते हैं, वह असत्य है । आप भी संसार के अनेक व्यक्तियों की भाँति एक साधारण व्यक्ति हैं उनसे ऊँचे नहीं, यह मैं विश्वास से कह सकती हूँ !'

'मैं प्रतिवाद नहीं करूँगा नीलिमा, परन्तु हरि को मुझे जैसा साधारण व्यक्ति न समझ बैठना, उसके जैसे लोग इस संसार में मिलने बहुत दूभर हैं ।'

'यह बात मैं प्रथम भेंट में ही जान गई थीं नीरेन बाबू ।' नीलिमा शून्य नेत्रों से छत की ओर निहारने लगी !

११

आनन्दातुर मृणाल ने दौड़कर नीलिमा को बाहों में भर लिया। हँसकर कहने लगी, 'आज मैं आ गई जीजी, कितनी बार तुमने बुलाया, परन्तु कभी भी मैं आ न सकी। कितने उलाहने भी तुमने दे डाले, मान-अपमान की बातें भी कहीं, परन्तु सदा मैं टालती ही गई और आज अचानक बिना बुलाये ही आ गई हूँ जीजी।' मृणाल हँसने लगी।

आनन्द-विह्वल नीलिमा ने मृणाल का माथा चूम लिया, उसे बाहों में भरे कहने लगी, 'आज अचानक बिना सूचना दिये ही तुम मेरे सामने आ खड़ी होगी मृणाल, इसकी तो स्वप्न में भी मैंने कल्पना नहीं की थी।'

'आज अचानक तुम्हारे सम्मुख आकर तुम्हें आश्चर्य में डाल देने का विचार था जीजी।'

'हाँ सो तो हुआ ही। प्रसन्नता से अधिक आज आश्चर्य तुम्हें देखकर लगा। एक युग बीत गया है मृणाल, जब से स्कूल छोड़ा तुमसे भेंट ही न हो सकी। मन कितना छटपटाता

रहा। तुम्हे बुलाने के कितने पत्र लिख डाले, परन्तु तुम टालतीं गईं। और आज आई हो तो कितनी दुर्बल होकर, म्लान होकर, मानों वह पहले की मृणाल तुम हो ही नहीं ! अच्छा मृणाल क्या याद आते हैं कभी वह पिछड़े दिन ?'

'उन्हीं की स्मृति तो यहाँ तक खींच लाई है जीजी ! नहीं तो यह संसार बड़ा विषम है। कितनी ही मान्य-अमान्य घटनाये यहाँ नित्य ही घटा करतीं हैं। कौन कब तक उन्हें मन में बसाये बैठा रहे ! कौन कब तक उन्हें देखकर आँसू बहाता रहे। जीवन की पगडन्डी पर चलता-चलता मनुष्य जब फिसल जाता है तो वह उठना चाहता है। परन्तु फिसलना तो अधिक है, चाहकर भी वह उठ नहीं पाता। फिर उसी में पड़ा रहकर वह सन्तोष कर लेता है, उस में पड़ा रहकर वह जीना चाहता है !' एक अस्फुट सो उसांस मृणाल के अधरों पर काँप गई।

आज निलिमा को हुआ प्रथम बार मृणाल के मन में अथाह वेदना का भास। उस दिन की वह चंचल मृणी और आज की यह अति गम्भीर मृणाल ! कितने प्रतिद्वन्दी यह चित्र हैं। कितना परिवर्तन हुआ है इस मृणाल में। लाख प्रयत्न करने पर भी इस रहस्य को नीलिमा समझ न सकी। कहने लगी, 'अरे अभी यहीं खड़ी हो मृणाल, अन्दर चलो न। फिर शिकायत करोगी, युगों के बाद जीजी के यहाँ गईं और पलभर बैठ भी न सकी।'

मृणाल हँसने लगी, 'मेरी शिकायत से बहुत डर लगता है जीजी।'

'याद नहीं है क्या वह बीते दिन मृणाल, तुमसे तो मैं सदा से डरती आई हूँ, ऐसी चंचल लड़की जाने कौन सा उपद्रव खड़ा कर दे।'

'अब डरना नहीं होगा जीजी, युग बीतता है, समय बीतता है और साथ ही बदल जाता है मनुष्य भी। जीवन की झंझा उसे झकझोर देती है, टूटकर वह गिर पड़ता है, बस रह जातीं है केवल धुँधली सी स्मृति मात्र, जिसका शायद जीवन में कोई महत्व नहीं है।'

तभी नीलिमा सहसा पूँछ बैठी, 'अरे हाँ, अकेली आई हो तुम, तुम्हारे 'वो' नहीं आये।'

वेदना के भार से मानों मृणाल दब गई। शब्द उसका रुद्ध होकर कंठ में ही खो गया। एक अटूट शून्य से उसका मन भर उठा। कहने लगी, 'वो तो चले गये जीजी, कभी न लौटने के लिये। प्रयत्न करके भी उन्हें रोक न पाई। बस सप्ताह भर की ही तो बीमारी थी वह, ओह उसकी याद करते हृदय काँप उठता है। देखो कैसे नियम हैं नियति के। जिनको मनुष्य बाहों में भरकर रख लेना चाहता है वही समस्त बंधन तोड़कर क्षणभर में ही उड़ जाते हैं और रह जाता है वही जो घृणित है, पतित है और है निस्साहाय।' सहसा मृणाल मौन हो गई।

वेदना से अवाक नीलिमा उसकी ओर देखने लगी। एक बार उसके हृदय में 'धक' से होकर रह गया। अरे, कैसा यह दारुण दुख इस नारी पर आ पड़ा है। कैसी अभागिनी है यह। एक पुरुष को पाना चाहा, यह उसका प्रथम अभाग्य रहा और फिर पाकर भी उसे खो दिया, यह रही उसकी प्रतारणा! यह एक नारी है जो केवल मूक होकर रह गई है। जिसमें क्रंदन नहीं हैं, आँसू नहीं हैं। विद्रोह करना जो नहीं जानती या जानते हुये भी केवल मौन होकर जीना चाहती है। शक्ति जिसमें है, परन्तु जैसे वह ऊपर आया नहीं चाहती, साधना के आँचल में जो दबी रहना चाहती है। ऐसी ही यह नारी

है, उतनी ही दीन, उतनी ही निस्सहाय। एक बार उस नारी के प्रति नीलिमा का हृदय वेदना से भर उठा। कहने लगी, 'एक बार उसकी सूचना भी नहीं दे सकी मृणाल, सोचा होगा मैं तुमसे भिन्न हूँ।'

'भिन्न मैंने तुम्हें कभी नहीं समझा जीजी, ऐसा कभी समझ भी नहीं सकूँगी। यदि ऐसा समझती तो शायद तुम्हारा आसरा ढूंढ़ने यहाँ तक न दौड़ आती। एक दिन शादी के अवसर पर तुम्हें निमंत्रण भेजा था, परन्तु तुम आ नहीं सकीं। फिर सोचा मेरे सुख में, मेरी प्रसन्नता में तुमने साथ नहीं लिया तो अब अपने दुख का बटवारा करने को तुमसे नहीं कहूँगी। संसार भर की पीड़ा अब मैं अपने हृदय पर ले सकती हूँ जीजी।'

'परन्तु इस विशाल विश्व में तुम तो अकेली ही हो मृणाल, जीविका चलाने के लिये कोई साधन ढूंढ़ना तो अनिवार्य हो ही गया है।'

'हाँ, वही तो कहती हूँ नीलिमा। तुम्हारे समीप रहकर कुछ जान लिया था, कुछ पढ़ लिख भी गई थी। उसी स्कूल की हेड-मिस्ट्रेस एक दिन सहसा प्रसन्न हो उठीं। मेरी वेदना देख सहसा मुझ पर दया करने को उतावली हो गईं! परन्तु मैं स्वीकार न कर सकी। देखो जीजी, इतनी दया का भार क्या मेरे यह दुर्बल कन्धे ढो सकते थे। मैंने कह दिया उनसे, कि सुख के दिन बीत गये हैं तो दुख के दिन भी ठहर नहीं सकेंगे। परन्तु मेरे मन की यह भावना कि आपने मेरी वेदना को देखकर कृपा की भिक्षा प्रदान की है मेरी आत्मा में सदा कसकती रहेगी। आप की यह दया मेरे लिये अभिषाप बन जायगी। मुझे काँटों की झाड़ी में न ढकेलिये, मुझे क्षमा कर दीजिये।'

'परन्तु फिर एक दिन देखा उनमें ममता का रूप माता का रूप, जिसकी उपेक्षा मैं नहीं कर सकी और उसी दिन मैंने उनके स्कूल में पढ़ाना स्वीकार कर लिया। परन्तु आज अचानक उनका सहारा भी छूट गया। मन ऊब उठा और तुम्हारे पास दौड़ आई।'

नीलिमा स्तब्ध होकर उसकी ओर देखने लगी। कैसी यह नारी है, कैसा यह अभिमान है उसका, जो कभी झुकना नहीं जानता। एक अटूट मौन ने उसे आ घेरा।

मृणाल सहसा हँसने लगी, 'तुम्हें अनजाने में ही मैंने वेदना से भर दिया नीलिमा, क्षमा करना······अच्छा क्या तुमने अभी तक शादी नहीं की जीजी।'

नीलिमा को आश्चर्य लगा। कितनी शीघ्रता से मृणाल ने अपने को बदल डाला, मानों उसकी मन की वेदना क्षण भर में ही बह गई और कहीं भी उसका कोई कण उलझा नहीं रह गया। मृणाल मुस्कराती रही!

नीलिमा कहने लगी, 'सुधीर बाबू को तो तुम जानती हो मृणाल। एक बार तुमसे भी तो भेंट कराई थी उनकी। वही इधर एक सप्ताह से आये हुये हैं! बड़े विनीत होकर याचना करते हैं बेचारे, मुझे तो बड़ी दया लगती है उन पर।'

'क्या सुधीर बाबू को पाकर तुम अपना सौभाग्य नहीं मानती नीलिमा,' सहसा मृणाल पूँछ बैठी।

नीलिमा हँसने लगी, 'क्या कहती हो मृणाल, नारी पुरुष को पाकर अपना सौभाग्य माने? अभिषाप की रेखाओं से बरदान का निर्माण करे? तुम अपनी ही बात देख लो न मृणाल! एक पुरुष की सेविका बनकर तुमने उसे अपना सब कुछ समर्पित कर दिया और वही एक दिन तुम्हें छलकर चला गया, सदा के लिये। फिर उसी पुरुष वर्ग ने

ठहराया तुम्हें पापिन, कलंकिनी और दूषित नारी। एक पुरुष को तुमने अपना सर्वस्व सौंप दिया था, यही था तुम्हारा वह गूढ़तम अपराध, जिसके कारण तुमने इतनी लाँचना पाई, इतनी पीड़ा सही। और फिर भी नारी उसी पुरुष को अपनाने में अपना सौभाग्य समझती है, कैसी विचित्र बात है मृणाल।'

मृणाल मौन हो गई। उसके हृदय की अनन्त ग्रन्थियों तक एक वेदना सी समा गई। तभी आतुर होकर नीलिमा कहने लगी, 'मुझे क्षमा करना मृणाल, मैंने तुम्हारे हृदय की सुप्त वेदना जगा दी है। मैं जानती थी तुम्हें कष्ट होगा। यह बातें कहना भी नहीं चाहती थी, परन्तु क्या करती लाचार होगई।'

मृणाल पुनः हँसने लगी, 'इन बातों से दुख होता अवश्य है जीजी, परन्तु उसकी उपेक्षा करना मैं सीख गई हूँ।'

तनिक देर रुककर नीलिमा फिर कहने लगी, 'यहाँ और दो एक पुरुष हैं जो अन्य पुरुषों से भिन्न हैं। तुमसे मैं उनका परिचय कराऊँगी। एक हैं नीरेन बाबू, अनजाने में ही उनपर श्रद्धा हो जाती है। दूसरे हैं हरीश, मन चाहता है उन्हें प्यार करने लगें, कभी कोई उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता और तीसरे हैं मेरे पिता जी।'

'यह भी तो पुरुष हैं जीजी। विचित्र बात है फिर भी तुम उन्हें प्यार करती हो।' एक तीक्ष्ण व्यंग से मृणाल नीलिमा की ओर देखने लगी।

'मैंने प्रथम बार एक पुरुष को जाना मृणाल, वह थे पिता जी। मैं उन्हें प्यार करती हूँ, जब तक वह मेरे पिता हैं, बहुत प्यार करती हूँ। परन्तु जब वह पुरुष बन जाते हैं, उनके प्रति मेरा हृदय घृणा से आच्छन्न हो जाता है।' कहते कहते प्रतारणा से एक बार नीलिमा काँप उठी। 'और यह दो पुरुष हैं,

नीरेन और हरीश मैं उन्हें प्यार करती हूँ, उन पर श्रद्धा रखती हूँ परन्तु उनकी दासी बन जाना नहीं चाहती।'

'प्रेम का अन्तिम रूप क्या है नीलिमा, जानती हो'

'बताओ।'

'प्रेम का अन्तिम रूप है सेविका बन जाना, स्वयं अपने अस्तित्व को प्रियतम के अस्तित्व में लीन कर देना।'

नीलिमा हँस पड़ी, 'नहीं मृणाल प्रेम का अन्तिम रूप पत्नी में नहीं, प्रेयसी में होता है। पत्नी सेविका बनकर दासी बन जाती है और प्रेयसी सेविका बनकर भी रह जाती है स्वामिनी, यही है उसका वास्तविक रूप।'

तभी आ पहुँचा नीरेन। नीलिमा खड़ी हो गई। परिचय कराती हुई बोली, 'मृणाल से मिलिये नीरेन बाबू।'

'मृणाल' एक नवीन सा सम्बोधन नीरेन को लगा। हाथ उसके अनजाने में ही उठकर जुड़ गये। उसने मृणाल में देखा एक अतुलनीय रूप, अतीत छवि। मन से अनायास ही कोई चिल्ला उठा, 'नहीं, ऐसा कभी नहीं देखा।' उस सौन्दर्य प्रतिमा ने एकबारगी उसे मुग्ध-सा बना दिया। कहने लगा, 'परिचय बहुत छोटा है मृणाल जी और नीलिमा से भी पहले कभी आपके विषय में जान नहीं पाया, इसीसे एकबारगी पहचानने में कुछ कठिनाई हो रही है, क्षमा कीजियेगा।'

'क्षण भर में ही किसी को समझ लेने का तो दावा नहीं किया जा सकता नीरेन बाबू। हाँ, अभी-अभी नीलिमा जीजी ने भूमिका सहित जो आपकी प्रशंसा मेरे सामने की है उससे मैंने यह भय अपने मन से निकाल दिया है।'

'कितनी सरल-निर्मल यह मृणाल है, इस दो क्षण के परिचय में भी यह नीरेन के मन से अज्ञात न रह सका। तभी

नीलिमा कहने लगी, 'अच्छा नीरेन बाबू, अभी बातें हो रहीं थीं नारी की अपनी अपनी अवस्था पर, समाज में पुरुष के प्रति उसके कर्त्तव्य पर। आप इस विषय में क्या कहते हैं।'

'पक्षपात में कहीं सत्य को असत्य न कर दीजियेगा नीरेन बाबू।'

'नीरेन बाबू का अपमान न करो मृणाल। पक्षपात का उनके जीवन में कहीं कोई लगाव नहीं हो सकता, ऐसा मैं विश्वास से कह सकती हूँ।'

'जो अभी नीलिमा ने कहा है उसे बिलकुल सत्य ही न मान लीजियेगा मृणाल जी, बात बहुत कुछ बढ़ाकर कहने का इतना अभ्यास है। हाँ, नीलिमा जी, बात थी नारी की अवस्था पर। कैसी दीन-हीन रह गई है आज की भारतीय नारी, कैसा पतन हुआ है उसके सामाजिक जीवन का। पुरुष के लिये उसे जीना पड़ता है, केवल उसकी वासना तृप्ति के लिये, मानों उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं। वह हँसती है, पुरुष के लिये, रोती है पुरुष के लिये, गाती है पुरुष के लिये। उससे हटकर मानों जीवन की साध पूरी नहीं होगी। आज के समाज में नारी का पुरुष पर कोई अधिकार नहीं है, पुरुष की आज्ञा पर उसे जीना पड़ता है, चाहे जितनी ही दूषित वह क्यों न हो।'

मृणाल हँसने लगी, 'नारी की स्वतन्त्रता पर आप विश्वास करते हैं नीरेन बाबू, आप चाहते हैं हमारे सामाजिक एवं राजनैतिक संघर्ष में नारी पुरुष से कन्धा मिलाकर चले। यही तो कारण है जो इतना पतन हुआ है आज नारी के चरित्र का। युग-युग से चले आये ईश्वर के नियमों को आप तोड़ डालना चाहते हैं। आप जीवन के प्रत्येक पहलू में नारी को अपने

साथ रखना चाहते हैं, चाहते हैं कि वह पुरुष के हर कार्य में उसका साथ दे। आप भूल जाते हैं कि घर में रहने के लिए ही नारी का निर्माण हुआ है, वह घर की लक्ष्मी है, सामाजिक एवं राजनैतिक संघर्ष में साथ चलने वाली संगिनी नहीं। ऐसाही कुछ शास्त्रों का विधान है।'

'नहीं, बहुत दिन पहले जब नियम बने तो पुरुष और नारी का समान अधिकार था परन्तु बाद में पुरुष स्वार्थवश नारी के अधिकार छीनने लगा, उन्हें हर प्रकार से दबाने का प्रयत्न करने लगा। तभी रचना की गई शास्त्रों की, अपने स्वार्थों को सम्मुख रखकर। आप भी उन्हीं शास्त्रों पर विश्वास करती हैं मृणाल जी। जो छल है, कपट है, उसी को आप सत्य मान लेना चाहती हैं। इन शास्त्रों के रचने वाले भी पुरुष ही थे। उनके हाथ में सदा से शक्ति रही है, शारीरिक भी और आर्थिक भी। इसी शक्ति के बल पर उन्होंने नियम बना डाले अपने स्वार्थों को सन्मुख रख कर और उन्हीं नियमों को जबरन नारी पर थोपकर उसे बिलकुल परतन्त्र बना डाला, जिससे वह कभी अपना सर न उठा सके। तभी खो दिया नारी ने अपना अस्तित्व भी और सीखा दुराचारी पुरुष पर भी श्रद्धा रखना। पुरुष चाहे सारे दिन घर से बाहर रहे परन्तु यदि नारी क्षण भर को भी पुरुष की आज्ञा लिए बिना स्वतन्त्र वातावरण में स्वांस लेने का अधिकार मांगे तो कहलावेगी वह कलंकनी, दूषिता।

'ऐसी तो व्यवस्था है हमारे समाज की। नारी को क्षेत्र मिला है घर का और पुरुष को मिला है बाहर का, नहीं तो समाज का गठन ही बिगड़ जाय।

'तब भी क्या क्षण भर घर से बाहर रहकर नारी दूषित हो जायगी और घर में रह कर भी वह पवित्र बनी रहेगी

इसका कौन सा दावा है। और रही चरित्र की बात तो यह समाज में स्वछन्द विचरने पर नहीं मन की दूषित ग्रन्थियों पर निभर है। नारी को घर में बन्दकर आज कितना अन्याय हमने देश और समाज के प्रति किया है जानती हैं आप।'

'बताइये।'

'तनिक से स्वार्थवश हमने अपनी शक्ति आज आधी बना डाली है, सामाजिक दृष्टि में भी और राजनैतिक दृष्टि से भी। इसी से यह देश पतन की ओर दौड़ा जा रहा है। बाक़ी रह गई है भोग–विलास की वस्तु। आज के साम्प्रदायिक दंगों को आप देखती हैं। हिन्दू पक्ष उठा ले जाते हैं नारी को। मुसलमान उठा ले जाते हैं नारी को, क्यों ? यह सब क्या है ? क्यों इतनी दीन बनी है आज की नारी ? कारण है पुरुष। नारी का समस्त संगठन जिसने छिन्न-भिन्न कर दिया है वह नारी को केवल अपने आधीन रख कर ही सन्तुष्ट हो सकता है। विवाहित व्यवस्था ही ले लीजिये समाज की। पत्नी के मर जाने पर पुरुष चाहे जितनी शादियाँ कर सकता है, उसे अधिकार है उसका, और दूसरी ओर एक पति के मर जाने पर नारी को उसी की स्मृति में जीना पड़ता है। कैसा विचित्र विधान है यह ! नारी दुर्बल है, जीवन में उसे आवश्यकता है एक साथी की, परन्तु उसी से उसे वंचित रक्खा जाता है और पुरुष है शक्तिशाली, साथी की उसे आवश्यकता नहीं, फिर भी उसे इसका अधिकार है। यह सब होता है शास्त्रों की साक्षी मानकर। आप भी उस पाखन्ड पर विश्वास करती हैं, मृणाल जी।

'आप ईश्वर को मानते हैं नीरेन बाबू।'

इस अचानक प्रश्न पर आश्चर्य से नीरेन उसकी ओर

देखने लगा ! 'यह सृष्टि ईश्वर का सहारा पाये बिना पल भर भी कैसे चल सकती है मृणाल जी।'

'विचित्र बात है, ईश्वर पर आप विश्वास करते हैं और शास्त्रों को आप नहीं मानते ! शास्त्र तो ईश्वर के पावों से जंजीरों से बँधे हैं। ईश्वर पर विश्वास किया जाय तो बरबस उन्हें मानना पड़ता है। उनपर अविश्वास करके पलभर भी चला नहीं जा सकता।'

'विश्वास अविश्वास क्या है मृणाल जी, मन की भावनाओं का एक अंग ही तो है। एक मनुष्य में वह उत्पन्न हो सकता है, दूसरे में नहीं, इसीसे उसका महत्व ही क्या।'

'मन की भावनाओं का सहारा लेकर सत्य को असत्य तो किया नहीं जा सकता नीरेन बाबू।'

'जो भी हो नारी जाग रही है। उसे उठना होगा, पुरुष के प्रति अपनी कोमल भावनाओं को त्याग कर अपने अधिकारों की रक्षा करनी होगी। बन्धन टूट रहे हैं, नारी सजग हो गई है। आज पुरुष का एक एक छल, एक एक कपट उससे अज्ञात नहीं रहा है।'

मृणाल खिन्न हो उठी। उसे लगा जैसे वह कोई बहुत कठिन उत्तर देगी। परन्तु तभी आ पहुँचे नीलिमा के पिता जी, तीनों उठ खड़े हुये। नीलिमा उनके पास जा खड़ी हुई। 'देखिये पिता जी, यह आई है मृणाल।'

मृणाल ने दोनों हाथ जोड़ लिये पिता जी मुस्कराने लगे, 'अच्छी तो हो बेटी।'

'आप की चरण धूलि की कृपा है पिता जी।' मृणाल विनीत हो उठी।

'यह नीलि कहती थी, तुम्हें कितनी बार बुलाया परन्तु तुम आ ही नहीं सकी।'

'हाँ पिताजी, मेरे इस दुर्भाग्य का अपराध मुझसे अवश्य बन पड़ा है। कितनी ही बार प्रयत्न करके आना चाहा, परन्तु फिर आ ही नहीं सकी।'

'अच्छा अच्छा बैठो बेटी।' फिर कहने लगे, 'तुम ठीक हो नीरेन।'

'कृपा है आपकी।'

हसँते हुये पिताजी चले गये। तभी नीरेन उठ खड़ा हुआ 'अब चलूँगा मैं।'

'जाइयेगा नीरेन बाबू।'

'एक बात और है।' नीरेन लौट आया।

'काहिये।'

'हरीश का पत्र आया है। आज ही शाम को माँ उसे लेकर यहाँ आ पहुँचेगी।'

नीलिमा प्रफुल्लित हो उठी, 'हरीश आ रहे हैं आज।'

'हाँ, मैं स्टेशन जाऊँगा, चाहो तुम भी चल सकती हो।'

'अवश्य चलूँगी मैं और मृणाल भी। चलेगी तू मृणाल!'

'कह नहीं सकती, शायद न भी जा सकूँ।'

नीरेन ने मानों सुना नहीं। कहने लगा, 'शाम को मैं आ जाऊँगा। आशा है आप तैयार रहेंगी।'

नीरेन चला गया परन्तु मृणाल के रूप की जो घनिष्ट छाप उसके हृदय पर बैठ गई वह कितनी ही देर तक धुँधली न पड़ सकी।

१२

हरीश को लिये माँ ट्रेन से उतर पड़ीं। नीरेन उसकी पग-धूलि लेने को दौड़ पड़ा और आनन्दित होकर हरीश ने माथा नीरेन के पावों पर रख दिया। नीलिमा ने माँ के पाँव छू लिये, बोली 'मैं भी आशीर्वाद पाने के लोभ में आ गई हूं माँ।' फिर हरीश से पूँछने लगी, 'आप तो अब बिलकुल ठीक हैं हरीश।'

'ईश्वर से आप लोगों की प्रार्थनायें निष्फल ही चली जातीं क्या ?' कहकर हरीश हँसने लगा।

माँ अभी नीरेन से ही उलझी थीं। सभी उनके पास आ खड़े हुये। उलाहने के स्वर में माँ कहने लगी, 'कैसा दुर्बल हो गया है तू नीरू, मैं जानती थी मुझसे दूर रहकर पलभर भी तू रह न सकेगा।'

'आज मुझे जीवित देखकर प्रसन्न होने का जो अवसर तुम्हें प्राप्त हुआ है उसके लिये बिना नीलिमा का आभार माने नहीं रहा जा सकेगा माँ।' नीरेन नीलिमा की ओर देखकर मुस्कराने लगा।

अतीत की जटिल आशंका की कल्पना से ही माँ मानों एक बार काँपकर रह गईं। नीरेन को पास खींचकर एक साथ ही द्रवित हो उठीं, 'क्यों नीरू, बता तो क्या हुआ था तुझे ?'

'एक दिन बीमार पड़ा था, माँ। देखा कोई पास नहीं है। सगे-सम्बन्धी, अपने-पराये सभी पीछे छूट गये हैं, दूर, बहुत दूर, जिन्हें छुआ नहीं जा सकता, देखा भी नहीं जा सकता। तन-मन शून्य हो गया। कहीं कुछ भी नहीं रहा। केवल हृदय के किसी कोने में छिपी-सी रह गई तुम्हारी याद ! तभी आ पहुँची नीलिमा तुम्हारी ममता की छाया लिये और खींच लाई मुझे उस अगाढ़ अन्धकारमय काल के करों से।'

माँ ने सुना, एकबारगी वह भय से कांप उठी। नीरेन को बाहों में भर लिया। एक बार वह भूल गई, वह कहाँ है। वह भूल गई कि जग की असंख्य आँखें उनके मुख पर जम गई हैं। भूल गई कि मन के प्यार के पास लोक-लाज का भी स्थान है। उसके मन में केवल रह गया नीरेन और उसके प्रति हृदय की अबाध ममता। उलाहना देकर कहने लगीं, 'तू बीमार पड़ा नीरू, मुझे सूचना भी न दी। सूचना मिलते ही इस हरि को लिये मैं दौड़ आती, कहीं कुछ और हो जाता तो…।' माँ बार-बार नीरेन का माथा चूमने लगीं।

उत्तर दिया नीलिमा ने, 'कुछ अधिक नहीं हुआ था माँ, इसीलिये तुम्हें कष्ट देने का मन नहीं हुआ। सोचा कि माँ नहीं हैं तो क्या हुआ, उसकी अपनी बेटी नीलिमा तो है ही, फिर चिन्ता की बात क्या है।'

नीरेन हँसने लगा। माँ का आँचल पकड़कर बोला, 'एक बात तुमने सुनी माँ ?'

श्रद्धा और स्नेह से माँ नीलिमा की ओर निहार रही थी। एक अतुल ममता आज अनजाने में ही उसके हृदय से नीलिमा

पर बिखर पड़ी। उधर से मुँह हटाकर बोली, 'क्या बात सुना रहा है नीरू ?'

'यह नीलिमा कहती थी माँ कि बीमारी में मैंने तुम्हारी समस्त वस्तुयें छू-छूकर अपवित्र कर दी हैं, तुम्हें प्रायश्चित करना होगा। तुम भी तो अपनी माँ के बेटे हो न। और भी ऐसी ही जाने कितनी ही बातें कहती गईं। बताओ माँ, ठीक ही कहा न नीलिमा ने।'

सहसा नीलिमा उदास हो गई, 'हाँ, माँ झूठ तो मैं बोल नहीं सकी। उन कुछ दिनों में ही इस अपवित्र देह से मैंने वस्तुयें नष्ट कर ही डाली हैं।'

आनन्द से माँ ने नीलिमा को बाहों में भर लिया। उँगलियों से उसकी ठोढी पकड़ कर बार-बार चूमने लगी। 'अरे कैसी पगली लड़की है तू नीलि, जाने क्या-क्या बकने लगती है। मेरी ऐसी सुन्दर कोमल-सी लड़की क्या कभी अपवित्र हो सकती है। कैसी अनहोनी बात है। मेरी नीलि ऐसी होगी, क्या विश्व विश्व नहीं रहेगा, क्या ईश्वर के नियम मृत होकर जड़ हो जायँगे। नहीं तू नहीं जानेगा नीरू। संसार में कोई नहीं जानेगा परन्तु मैं जानती हूँ, मेरी यह नीलिमा संसार' की समस्त लड़कियों से ऊँची है, सबसे पवित्र है।'

नीलिमा को लगा जैसे बोझिल स्नेह से वह दबी जा रही है। अनन्त गहराइयों तक उसका हृदय आनन्द से भर उठा और दो आँसू अनजाने में ही पलकों में सिमट कर सूख गये।

नीरेन हँसने लगा, 'ऐसी कौन सी माया देखी है नीलिमा में माँ, जिसने तुममें इतना परिवर्तन ला खड़ा किया है।'

'एक दिन तू समझेगा नीरू, कौन-सी माया, कौन-सी शक्ति इस नीलिमा में है, ऐसा मैं विश्वास से कह सकती हूँ।' फिर

कुछ रुककर बोली, 'अच्छा चलोगे नहीं तुम लोग, यहीं खड़े रहोगे क्या ?'

नीलिमा हरीश के पास आ खड़ी हुई, 'अच्छा अब चलूँगी हरीश बाबू। शाम को कुछ देर के लिए क्या आप आ नहीं सकेंगे। न होगा मैं स्वयं आकर आपको लिवा जाऊँगी। मेरी एक सहेली हैं मृणाल, एक युग के बाद मुझसे मिली हैं, उनसे आपका परिचय कराऊँगी।'

हरीश मुस्करा दिया, 'आपकी आज्ञा होगी तो आना ही पड़ेगा नीलिमा जी।'

१३

किसी की पुकार सुनकर नीरेन रुक गया। स्वर कुछ पहचाना सा लगा। देखा मृणाल एक ऊँचे से पत्थर पर खड़ी रुमाल हिलाहिलाकर उसे बुला रही है। पास आते ही मृणाल हाथ जोड़कर खड़ी हो गई, 'आप के आवश्यक कार्य में बाधा तो नहीं बन गई हूँ नीरेन बाबू।'

नीरेन मुस्कराने लगा, 'नहीं बाधा कैसी, इस समय यो जरा घूमने ही निकला था।'

'आप नित्य ही तो इस समय घूमने जाते हैं न ?'

'नहीं रोज जाने का अभ्यास तो मेरा नहीं है।'

'मैंने कल भी आपको इसी राह से जाते देखा था, कितनी आवाजें दे डाली, परन्तु आपने सुना ही नहीं, जाने कौन सी साधना में लीन आप चले जा रहे थे।' मृणाल हँस पड़ी फिर तनिक देर में गम्भीर होकर कहने लगी, 'देखिये नीरेन बाबू

अकेले घर में बैठे-बैठे मन ऊब उठता है। नीलिमा जीजी सारे दिन जाने कहाँ कहाँ घूमती हैं, जाने क्या क्या किया करती हैं। मैं पूछती हूँ तो कुछ बताती ही नहीं। ऐसे ही टाल देती हैं। सोचती हूँ शायद उनका विश्वास मुझ पर नहीं है।'

'विश्वास की बात नहीं मृणाल जी, बड़ी साधना का वह पथ है जिसपर नीलिमा आज बेसुध होकर दौड़ी जा रही है। आप जानती हैं तनिक सी भी असावधानी से कितना बड़ा अनर्थ हो सकता है।'

'मैं बहुत अयोग्य हूँ इसके लिये यही तो आप कहना चाहते हैं न।' मृणाल हसँने लगी, 'एक बात बताईयेगा।'

'पूछिये।'

'इतने दिनों से आप आये क्यों नहीं। मैं नित्य ही आपकी राह देखती रही। इन बीस दिनों की लम्बी अवधि में आज केवल दो बार ही आपको देख पाया है।'

'इधर बहुत कार्य रहा मृणाल जी, पल भर का भी अवकाश नहीं मिल सका।'

मृणाल उठ खड़ी हुई, 'आप घूमने जा रहे थे न, मैं भी आपके साथ चलूँगी।'

'आप भी चलियेगा!' सकोचं से नीरेन पूँछने लगा।

'हाँ, चलूँगी मैं भी। संकोच हो रहा है आपको, भय लगता है, आप प्रसन्न हैं तब भी।' मृणाल शुष्क सी हँसी हँस उठी।

नीरेन ने मानों सुना नहीं। कहने लगा, 'नीलिमा जी यहीं हैं क्या, न हो उन्हें भी साथ ले लें।'

'जीजी यहाँ नहीं हैं, शायद अभी आयेंगी भी नहीं, परन्तु आप जा सकते हैं। मैं आपके ऊपर भार बनकर चलना नहीं चाहती।'

'नहीं चलिये ।' खोया-सा नीरेन कह उठा।

मृणाल नीरेन का हाथ पकड़े हँसती हुई चलने लगी। जाने कितने देर दोनों चुपचाप चलते गये। अंधियारा घना होकर घेरने लगा। पूर्णिमा का चन्द्रमा दूर पूर्वी क्षितिज को लाँघ किरणों का आंलिगन भरे धीमें-धीमें मुस्कराने लगा। दोनों चुपचाप चलते गये, चलते गये। बहुत देर पश्चात नीरेन ने मौन तोड़ा, 'अब लौट चलना चाहिये मृणाल जी, अँधेरा घिरने लगा है।'

'आज आपके साथ आई हूँ नीरेन बाबू तो बड़ा सुख मिल रहा है, कुछ दूर और चलिए न।' कहकर मृणाल मुस्कराने लगी, 'आप डरिये नहीं, आपको घर तक मैं पहुँचा आऊँगी।'

नीरेन मौन हो गया। तनिक देर में ही मृणाल विनीत हो उठी, 'कभी-कभी आया जाया कीजिये न नीरेन बाबू। अकेले मन नहीं लगता। कोई संगी साथी भी तो यहाँ नहीं है। मैं तो अकेली हूँ, बिलकुल अकेली। सच कहती हुँ आज आप आ गये हैं तो बड़ा सुख मिला है, बड़ी शान्ति पाई है। आप की यह कृपा मैं जीवन में कभी नहीं भूल सकूँगी।'

'आप कहेंगी तो रोज आ जाया करूँगा। एक बात कहना चाहता हूँ, मानियेगा!'

'कहिये।'

'आप भी हमारे दल में क्यों न आ जायँ। नीलिमा के साथ मिलकर आप काम कीजियेगा। मुझे आशा है आप नीलिमा को एक अच्छे साथी के रूप में मिल सकेंगी।'

'कैसा दल नीरेन बाबू।'

'इस समय तो इतना ही समझ लीजिये कि फूल बनने के पहले जो मुरझा गये हैं, जो थककर चूर हो गये हैं उन्हें

सहारा देना, उन दीन दलिद्रों का अधिकार उन्हें दिलाना ही हमारे दल का ध्येय और कर्तव्य है।'

'आप पूँजीपतियों को नष्ट कर देना चाहते हैं नीरेन बाबू ?'

'हम पूँजीपतियों को नष्ट करना नहीं चाहते मृणाल जी। हम चाहते हैं कि पूँजीपति गरीबों का अधिकार उन्हे दें। आप गरीबों की बस्तियों में जाइये। आप देखेंगी वे बस्तियाँ कितनी गन्दी हैं। दुर्गन्ध के कारण वहाँ पल भर भी ठहरना दूभर हो जाता है। उनके झोंपड़ों को देखिये। नित्य ही कितनी बीमारियाँ वहाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। नित्य ही कितने व्यक्ति उन बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। उनके लिये डाक्टर नहीं हैं, इलाज के लिये अधिक पैसे भी नहीं हैं। सारे दिन शारीरिक कार्य करने वाले उन व्यक्तियों को उचित खाना नहीं मिलता, बच्चों को दूध नहीं मिलता। बचपन से ही वह निशक्त पड़ जाते हैं। वह अपने बच्चों को शिक्षा भी नहीं दे सकते। उनके रहन-सहन का स्तर कितना नीचा है। उनके जीवन में कोई सुख नहीं है। वह जीते हैं केवल जीने के लिये। हम चाहते हैं कि पूँजीपति उनकी आर्थिक दशा सुधारें, जिससे वह भी मनुष्यों की भाँति रह सकें। अच्छे मकान बनवा सकें, बच्चों को उचित शिक्षा दे सकें तथा जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकें ! यह तभी सम्भव है जब पूँजीपति अपने लाभ का श्रम में वितरण करें।'

'परन्तु आपके विद्रोहों से, हड़तालों से तङ्ग आकर यदि पूंजीपति लाभ-वितरण करना स्वीकार भी कर लें तो आप यह कैसे जानते हैं कि वह ऐसा करेंगे ही। वह तो सरलता पूर्वक कह सकते हैं कि उन्हें तो लाभ हुआ ही नहीं।'

'इसके लिये हमें प्रबन्ध में मजदूरों के प्रतिनिधि भेजने होंगे मृणाल जी ! ये प्रतिनिधि क्रय-विक्रय का पूर्ण रूप से

निरीक्षण करेंगे। प्रति तीसरे या छठे मास ये प्रतिनिधि अपनी अपनी रिपोर्ट मजदूरों की आम सभा में रक्खेंगे।'

'परन्तु ये प्रतिनिधि पूर्ण रूप से ईमानदार होंगे। और पूंजीपतियों के सुनहले जाल में नहीं फंस जायंगे इसी का कौन दावा है।'

'इसके लिये हमें भारत भर में मजदूरों का सङ्गठन करना होगा। उनकी एक यूनियन बनानी होगी। इसी यूनियन से ईमानदार, सच्चरित्र तथा प्रगतिशील व्यक्तियों को लेकर एक कार्यकारिणी का निर्माण करना होगा। मिलों के प्रबन्धक उसी कार्यकारिणी के सम्मुख उत्तरदायी होंगे। प्रति मास मिल हिसाब को उस कार्यकारिणी के समक्ष पेश करेंगे। इसी प्रकार हमारे कार्य का ढ चा चलेगा। मानता हूँ यह सरल कार्य नहीं है। इसके लिये समय चाहिये, शक्ति चाहिये। परन्तु इतना विश्वास से कह सकता हूँ कि एक दिन ऐसा समय आयेगा, अवश्य आयेगा! बोलिये आप आयेंगी हमारे दल में।'

मृणाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन होकर वह सोचने लगी, क्या कभी ऐसा सम्भव है, क्या प्रलय के अन्तिम क्षण तक भी ऐसा हो सकेगा। क्या पूंजीपति युग-युग के अपने अधिकार को यूं पलभर में ही त्याग देंगे।'

बहुत देर बाद वह कहने लगी, 'अब लौट चलना चाहिये नीरेन बाबू अंधियारा घना होने लगा है।'

नीरेन हँस पड़ा, 'भय लगने लगा है क्या!'

मृणाल गम्भीर हो गई, 'हाँ संसार की अन्य वस्तुओं से नहीं, अब अचानक आप से भय लगने लगा।'

नीरेन स्तब्ध रह गया। परिहास तो यह नहीं है। तो क्या सत्य है यह? कहने लगा, 'अच्छा चलिये!'

राह में दोनों मौन चलते रहे। एक भी शब्द कोई नहीं

बोला, नीलिमा की कोठी के आगे आकर नीरेन रुक गया। 'अब आज्ञा दीजिये मृणाल जी।'

'अधिक देर मैं आप को नहीं रोकूंगी परन्तु क्या यहीं से जाइयेगा। अन्दर तक पहुँचा भी नहीं सकियेगा।' मृणाल मानों जबरन उसका हाथ पकड़कर खींचने लगी। नीरेन चुपचाप चलचित्र सा उसके पीछे जाने लगा।

'नीलिमा अभी तक नहीं आई है मृणाल जी।' नीरेन पूँछ बैठा।

'नहीं जीजी अभी नहीं आई हैं, आज आयेगी भी नहीं। होगा शायद कुछ आप की पार्टी का काम ?' कटाक्ष करके मृणाल मुस्कराने लगी, 'तनिक देर बैठिये आप, आपके लिये चाय बनाये लातीं हूँ।'

'आप बनायेंगी चाय।'

'हाँ, अथितियों की स्वयं सेवा करने का मेरा अभ्यास है।'

मुस्कराती हुई मृणाल चाय बनाकर ले आई!

'अधिक देर राह तो नहीं देखनी पड़ी नीरेन बाबू। देखिये, आज अपनी ऊँगली भी मैंने जला डाली है। खैर एक निशानी रह जायगी आपकी याद करने को भी।'

तभी नीरेन कहने लगा, 'एक बात मानियेगा।'

'कहिये।'

'आप अकेली हैं, न हो मैं आज यहीं रह जाऊँ।'

मृणाल सहसा गम्भीर होकर कठोर हो उठी, 'अकेले मुझे भय नहीं लगेगा नीरेन बाबू, जीवन की असंख्य भयंकर रातें मैंने अकेले ही रहकर व्यतीत की हैं! उसके लिये मुझे किसी का सहारा ढूढ़ने की आवश्यकता नहीं है! देखिये रात अधिक बीती है, अब आपको जाना चाहिये। चाहें तो एक प्याला चाय पी सकते हैं! मैं ऊपर जा रही हूँ, अवकाश मिले

तो कल अवश्य आइयेगा !' बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही मृणाल कमरे से बाहर हो गई।

१४

पूर्णिमा का चन्द्रमा रजनी के आंचल से मुहँ निकाल मधुर-मधुर आलोकित होने लगा, जिसके चमकीले केशों को आलिंगन में भरे आतुर पवन चिर-विरही की नाईं उन्माद भरे अनेक चुम्बन अंकित करने लगा। फौवारे का निर्मल जल कलकल करके बहने लगा। प्रकृति के इस-प्रेमरस-युक्त उत्सव पर नन्हें नन्हें पक्षी ताल देकर गा उठे। विश्व के इस सौन्दर्य ने मृणाल पर आज जाने कैसी मोहिनी सी बखेर दी। अपने कमरे की खिड़की में बैठी वह कितनी ही देर उस अनन्त तक फैले नीलाकाश की ओर निहारती रही। दूर का वह क्षितिग आज कुछ अधिक अन्धकारमय होकर उसे दीखने लगा। फिर वह नीचे उतर आई ! फौवारे का जल दोनों हाथों से उछालने लगी। एक नन्हीं सी कलिका तो अधरों से लगाकर जाने कितने प्यार भरे उन्मन्त चुम्बन अंकित कर डाले फिर जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। चन्द्रमा की एक पतली सी किरण वृक्ष की घन पत्तियों को लाघती हुई उसके वक्ष पर अठखेलियाँ करने लगी। उसे ही वह बहुत देर तक देखती रही। आज यह कैसा परिवर्तन उसके जीवन में आखड़ा हुआ है। कौन है वह जो अनजाने में ही उसके हृदय के बीच आकर मुस्कराने लगता है ! यह कैसी अज्ञात शक्ति है जो उसे ऊँचे उड़ाये जा रही है। कैसा मधुर स्पर्श है उसका जो बार-बार उसे आलिं-

गंन में भर कर उसके कपोलों पर पुलकभरे चुम्बन अंकित कर देता है। उससे आज कोई बहुत रूठकर बैठा है, उसके बहुत पास, झाँक झाँक कर उसके अन्दर देखने का प्रयत्न कर रहा है। अरे, दूर मत हटो, और पास बैठो मेरे, बिलकुल सटकर। आज मेरे मन के सारे रहस्य जान लो, समझ लो मुझे! बड़े मधुर हो तुम, बड़ा मधुर है तुम्हारा स्पर्श, बड़ी मधुर है यह मदहोशी! एक काली सी छाया बार बार उसके सामने आकर मुस्कराने लगी। बार बार उसकी लम्बी घनी अलकों को आकर थपथपाने लगी। बेसुध सी मृणाल उसे देखती रह गई। कोई कोमल अंगुलियों के मधुर स्पर्श से उसके मन के तार हिलाने लगा। उसके कण-कण में एक जीवनमय छन्द की रचना होने लगी। वह मुग्ध हो गई। अनजाने में ही उसने अपनी बाँहें वक्ष पर बाँध ली।

अरे, यह क्या होगया है उसे! कैसी हो गई है वह! एक दिन एक पुरुष को उसने प्यार किया था, उसे छल कर वह चला गया! उसके निधन पर समाज ने उसकी लांछना मेरे सिर मढ़ दी परन्तु मैं तो कभी भी उस पर आरोप नहीं लगा सकी सदा ही उसे हृदय में बसाये रही, परन्तु फिर भी आज उसी का स्थान लेने को यह कौन अनजाने में ही दौड़ पड़ा है। कैसा स्वप्न सा है यह, कैसी बेसुध सा घड़ी है। आज वही नीरेन बार-बार आकर क्यों सामने खड़ा होने लगा है।

एक बार प्रयत्न करके उस नीरेन को उसने मन से निकाल फेंकना चाहा। परन्तु ज्यों ही वह प्रयत्न करती गई और घिरकर नीरेन उसके हृदय में खड़ा होने लगा। तब एकबारगी उसने समस्त प्रयत्न त्याग दिये और उसी के मधुर चिन्तन में लीन हो गई।

सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही प्रातः की मदमत्त

समीरण मृणाल के कण-कण में एक नवीन स्फूर्ति भरने लगी। एक अँगड़ाई लेकर वह धीमे से मुस्करा उठी। समस्त रात कैसे मधुर स्वप्नों में वह खोई रही है, इस बैरी प्रात ने आकर कैसे क्षणभर में ही उन्हें छिन्न–भिन्न कर डाला। आम्र वृक्ष की लतिकाओं से सहसा कोकिल बोल उठी, 'पीहू-पीहू।' मृणाल के कानों में मधुर रस घुलने लगा, 'पीहू, पीहू।' वह उठ खड़ी हुई।

तभी आ पहुँची नीलिमा। कहने लगी, 'अरे, कब से यहाँ बैठी हो मृणाल, तुम्हें तो ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गई हूँ।'

'सारी रात ही तो यहाँ बीत गई है। बड़े मधुर स्वप्न देखे हैं जीजी, देखो उन्हीं की स्मृति तो अब तक मन-प्राण से ओझल नहीं हो पाई है। मैं तो जैसे खो गई थी, कुछ सुध ही न रही।' नीलिमा को आश्चर्य लगा, 'यहीं सारी रात बैठी रही हो क्यों ?'

'साधना कर रही थी जीजी,' मृणाल हँस पड़ी, 'जाने कैसी अज्ञात सी मोहिनी नीरेन बाबू ने कल मुझ पर बखेर दी। प्रयत्न करने पर भी उठ ही न सकी। चाँद-सितारों की छाया में प्रकृति के इस अनन्त सौन्दर्य के बीच मैं एक बार बेसुध होकर रह गई। कल मैंने प्रथम बार जाना, मैं उनसे प्यार करती हूँ जीजी। अनजाने में ही हृदय के जाने कौन से कोने में वह पांव जमाकर बैठ गये हैं। मैंने कल देखा तो मैं चकित रह गई। मैं उनसे शादी करूंगी जीजी।'

एक बार नीलिमा जोर से हँस पड़ी। प्रात की समीरण उसके कल कल नाद को बटोरे बहुत ऊँचा उठाकर अठखेलियाँ करने लगीं। बहुत देर तक नीलिमा हँसती रही, फिर बोली,' 'यह कैसे संस्कार हैं तुम्हारे मृणाल, कैसी विचित्र नीति है तुम्हारी! जो सदा तुमसे घृणा करता रहेगा, जो सदा तुम्हारी

छाया से दूर भागता रहेगा, क्या उसी पर तुम अपनी ममता उड़ेलती रहोगी, तनिक सोचो तो, उनसे विवाह करके क्या जीवन के किसी पल में भी तुम सुखी रह सकोगी! एक पुरुष को एक दिन तुमने प्यार किया! उस पर अपना सब कुछ अर्पण भी कर डाला! परन्तु वही एक दिन तुम्हें छलकर चला गया, फिर भी तुम उन्हें पहचान नहीं पाई। उन पर श्रद्धा रखना नहीं छोड़ा।'

उन्होंने तो कभी मुझे पत्नी कहकर स्वीकार न किया जीजी! उन्हें भी मैं कभी पति के रूप में स्वीकार न कर सकी! कितना चाहा कि उन्हें प्रियतम समझकर प्यार करने लगूँ परन्तु मन ने उन्हें कभी स्वीकार किया ही नहीं! फिर एक दिन सोचा कि जाने दो—जीवन की इस अवेला में सुख-दुख कैसा। दिन जब कट चुके हैं, अभिसार की गहरी रातें जब शान्त अकेले में बीत गई हैं तो अब किसी के आगे भिक्षा की झोली पसारने नहीं जाऊँगी! परन्तु आज देखती हूँ विप्लव बेला की नाई आकर जाने कौन अन्तर के अणु-परमाणुओं को झकझोर देता है। जाने कौन आज युग-युग की उस जटिल साधना को तोड़ डालना चाहता है।' मृणाल के नयन कोरों में एक विन्दु अश्रु आकर अचानक ढ़ल गया।

नीलिमा कहने लगी, 'यह तुम्हारी अपनी बात है मृणाल। उस पर कुछ कहने सुनने का मुझे अधिकार नहीं है। न ही उसे लेकर तुम्हारा निन्दा करने आई हूँ! परन्तु भिक्षा की जिस झोली को संभालते सभालते तुम्हारे यौवन के अनमोल क्षण गहरी निस्तब्धता में लीन हुये जा रहे थे, आज अनायास ही भिक्षा की उस झोली को पसार कर तुम समस्त विश्व के सामने आ खड़ी हुई हो। आज जो बात तुम कहने जा रही हो, वह बात एक ऐसे की है जो अपना एक अलग

व्यक्तित्व समेटे हमसे बहुत दूर है, बहुत ऊँचा है, जिसे प्रयत्न करने पर भी पाया नहीं जा सकता। पृथ्वी के चहुँओर एक बार आँखें पसार कर देखो, पाओगी उसे बहुत दूर, बहुत दुर्लभ। और उसी को पकड़ने को तुम बांहें फैलाये बेसुध होकर दौड़ पड़ी हो। कभी-कभी नीरेन को देखती हूँ तो लगता है मानों वह अकेले हैं, बिलकुल अकेले, प्रयत्न करने पर भी उसके पास पहुँचा नहीं जा सकता। और उन्हीं के द्वार पर तुम अपनी एकनिष्ट प्रेम और पूजा की आरती लुटा देना चाहती हो, अपना सर्वस्व लुटा दना चाहती हो, जानती हो अन्त इसका ?'

मृणाल सहसा आतुर हो उठी, 'नहीं, नहीं जानती, जानना भी नहीं चाहती जीजी। एक दिन जिनकी पग-धूलि लेकर ही मन में सन्तोष कर लेना चाहा था जब उन्हें पाने की मन में आग भड़क ही उठी है तो उसे अब नहीं रोकूँगी ! उससे जल जाने में जो सुख है उसे तुम नहीं समझोगी जीजी ! पुरुष की सत्ता को डिगा देने वाली नारी नीलिमा मानेगी इसे पतन, समझेगी पागलपन।' कहते-कहते मृणाल सहसा हँसने लगी। फिर बोली, 'परन्तु प्यार की भीख माँगने में उनके पावों पर नहीं गिरूँगी जीजी ! शून्य में रहकर जल जाना मैं जानती हूँ, उसे सह भो सकती हूँ। मन-अन्तर में जो आपदा-विपदा भी पड़े उसे हँस-हँस कर मैं झेल सकती हूँ। जानती हो जीजी, एक दिन अपनी मान, प्रतिष्ठा प्यार एक पुरुष को पावों तले रौंदने को सौंप दिया था। आज फिर किसी पुरुष से वही अनुरोध मैं कैसे कर सकूँगी ! क्या इतना पतन होगा मेरा जीजी, क्या इससे पहले ही मैं मर न जाऊँगी।' मृणाल मुस्कराती हुई चली गई।

नीलिमा अवाक् उसे देखती रही। परिहास तो यह नहीं

है। फिर यह क्या है? कैसी दशा है मृणाल के हृदय की लाख प्रयत्न करने पर भी वह समझ न सकी।

१५

'मृणाल मुझसे बहुत अधिक सुन्दर लड़की है नीरेनबाबू। हमारे साथियों में वह मुझसे अधिक प्रेरणा भर सकेगी। उसे भी क्यों न अपने साथ मिला लिया जाय।' नीरेन की आँखों में आँखें गड़ाये नीलिमा पूँछने लगी।

'तुम्हारी सरलता की मैं प्रसंशा करता हूँ नीलिमा! सब लोग ऐसे नहीं होते।'

'झूँठी प्रसंशा से सत्य अधिक भला लगता है नीरेन बाबू। हाँ, तो आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया।'

'एक दिन मृणाल को देखकर मैं भी यही सोच रहा था नीलिमा। परन्तु क्या इस योग्य वह बन सकेगी?'

'मृणाल में वह शक्ति है नीरेन बाबू जो विश्व की सत्ता को पलट सकती है। फिर उसके लिये हमें चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या। हरीश बाबू को आप पहचानते हैं। रज-कण में पड़े जर्जर मानव को उठाकर सफलता में सर्वोच्च शिखर पर वह बैठा सकते हैं, ऐसा विश्वास है।'

तभी आ पहुँचे हरीश और मृणाल। नीरेन हँसकर कहने लगा, 'देखो हरीश, यह नीलिमा तुम्हारी वकालत कर रही थी। मैं समझ रहा था तुम्हें अयोग्य व्यक्ति और यह मानने लगीं तुम्हें अटूट निर्माता!'

हरीश मुस्कराने लगा, 'भैया की बातें असत्य तो हो नहीं सकतीं। इसीसे केवल उन्हीं की बात पर विश्वास किया जा सकता है।'

नीलिमा कहने लगी, 'देखती हूँ आपकी नीरेन बाबू पर बड़ी श्रद्धा है। परन्तु धोखा है यह! एक बार उन्हें ठीक से परख कर देखो। तुम इनमें पाओगे अन्य व्यक्तियों की भाँति एक साधारण मानव! एक बार यह बीमार पड़े थे, उसी बीमारी में जो भाव उनका देखा, उससे इनकी महानता की समस्त भावनायें मैंने अपने मन से निकाल दी हैं!'

नीरेन हँसने लगा, 'हाँ, हरीश, एक बार मेरे अन्दर झाँक कर देखो, शायद नीलिमा का कथन सत्य मानना पड़े।'

हरीश सहसा आतुर हो उठा, 'नहीं भैया, ऐसा न कहो सुनने से भी पाप लगता है।' कहते-कहते हरीश ने झुककर एक बार उसके पाँव छू लिये और नयन कोरों में उसके दो बिन्दु अश्रु झलक आये।

नीरेन सहसा उदास हो गया। 'नहीं हरि, इतना आदर मेरे लिये मन में मत समेटो, इस अप्रिय भार का मैं कभी नहीं सह सकूँगा। तुम्हें अपनी इस आशा के लिये पछताना होगा, मैं कहता हूँ एक दिन अवश्य पछताना होगा।' एकबारगी वह गम्भीर होकर चुप हो गया।

तभी नीलिमा बोल उठी, 'देखिये हरीश, आज अन्तिम बार सभा करके कल प्रातः ही मिल मालिकों को नोटिस दे देना होगा। मिलों में आजकल बहुत आवश्यक कार्य चल रहा है। मिल मालिक मन माना लाभ कर रहे हैं। हम लोगों के पास भी मजदूरों के लिये काफी धन इकट्ठा हो गया है। आशा है हड़ताल शीघ्र सफल हो सकेगी।'

हरीश ने केवल कह दिया, 'मैं भी ऐसा ही सोच रहा था।'

'एक बात और है।'

'कहिये।'

'आज मैं आपके साथ नहीं जा सकूँगी! आपको ही आज मृणाल का परिचय सभा में कराना होगा। एक नवीन शक्ति आज अनजाने में ही हम लोगों के बीच आ खड़ी हुई है!'

हर्षोन्मत्त हरीश दो पलतक मृणाल की ओर देखता रह गया। एक भी शब्द उसके मुख से न फूटा।

नीलिमा कहने लगी, 'अधिक देर होने से ठीक नहीं होगा हरीश बाबू। आप लोगों को अब जाना चाहिये।'

❀ ❀ ❀ ❀

धीमा-धीमा अँधेरा घुमड़ने लगा था। नन्हें-नन्हें, बादल विस्तृत नील गगनपर आच्छादित होने लगे। तब काटेंदार झाड़ियों के बीच से होते हुए अनन्त पथ के राहों से हरीश और मृणाल एक पतली सी पगडन्डी पर बढ़ चले। एक अनजाने अटूट मौन ने उन्हें आ घेरा! तब बहुत देर बाद मृणाल बोली 'क्या सोच रहे हैं हरीश बाबू।'

हरीश जैसे एकदम से जागा हो, 'जानती हैं मृणाल जी, सभा में क्या कहकर आपका परिचय कराऊँगा।'

'नहीं।'

'उनसे कहूँगा, तुम्हारी नयी माँ आई हैं, इन्हें प्रणाम करो जानतीं हैं आप तब वह क्या करेंगे।'

'बताइये।'

'प्रसन्नता से तालियाँ बजा कर तब वह आपके पाँवों पर झुक जायेंगे! आनन्द से विकल होकर आपकी पग-धूलि लेने लगेगें!'

'ऐसे सरल लोग युग-युग से चली आई पूँजीवाद की कठोर ज..ीरों को कैसे तोड़ सकेंगे हरीश बाबू ।'

'तोड़ सकेंगे ! अवश्य उन्हें छिन्न-भिन्न कर डालेंगे ! रूढ़ियों से चली आई उनकी घोर, अथक साधना कभी निष्फल नहीं हो सकेगी । वह लोग जितने सरल हैं उतने ही कठोर भी, यह बात कुछ दिन उनके बीच रहने पर तुम अवश्य जान जाओगी ।'

'एक बात पूँछती हूँ हरीश बाबू ।'

'पूँछिये ।'

'आपकी इन पार्टियों से लाभ क्या है ।'

हरीश आश्चर्य से मृणाल की ओर देखता रह गया ! यह कैसा अटपटा प्रश्न अनजाने में ही यह मृणाल कर बैठी । खोया सा हरीश कहने लगा, 'क्या भारी भरकम मशीनों की भयङ्कर घरघराहट के नीचे छिपी हुई इन दीन हीन मजदूरों की चीत्कार आप नहीं सुनती मृणाल जी । क्या इनका आतुर क्रंदन आपके हृदय में तनिक सी भी करुणा नहीं भर लाता । पूँजीवाद के उन्माद का उन्मत्त अट्टाहास आप सुनती हैं जहाँ बलिदान के पशुओं की भांति ढेर के ढेर मनुष्य छोड़ दिये गये हैं, इन जड़ विशाल दीवारों के भीतर बबर्रता से उन्हें बाँध दिया गया है - केवल हाहाकार करने के लिये, रोने के लिये और मर जाने के लिये । समय बीत जाता है, पल बीतते हैं, दिन बीतते हैं और वर्ष बीत जाते हैं, परन्तु क्रंदन क्रंदन रह जाते हैं, आँसू सूख नहीं पाते । अपने अंचल से उन्हीं के आँसू पोछ देना हमारी पार्टी का काम है ।'

मृणाल को मानों विश्वास नहीं हुआ । 'एसा कभी हो सकेगा हरीश बाबू । हमारे यह मुट्ठी भर साथी क्या युग युग से चली आई पूँजीवाद की कड़ियों को पल भर भी तोड़ने में

समर्थ हो सकेंगे। लगता है मानों सृष्टि के अनादि काल से ही यह मजदूर बने हैं पिसने के लिये, मौन रहकर जल जाने के लिये और पूँजीवाद बना है उन्हें पीस डालने के लिये। जब से मजदूर बने तभी से बनी विरोध की भावनायें भी। परन्तु विप्लव की अनन्त चिनगारियाँ क्या पल भर पूँजीवाद की जड़ें हिला सकीं। कठोर होकर क्या क्षण भर भी वह उसके सम्मुख खड़ी हो सकीं। कभी सोचती हूँ हरीश बाबू कि मनुष्य लड़ता क्यों है। आये दिन विश्व में जो इतने बवन्डर उठा करते हैं, यह क्यों उठते हैं ? क्या इसी लिये कि मनुष्य थककर, दबकर जब चूर हो जाता है तो विरोध की चिनगारियाँ उगलने लगता है। नहीं मनुष्य दबे या न दबे, वह लड़ेगा, सृष्टि के अन्त काल तक लड़ता जायगा, मानों लड़ना उसकी प्रकृति हो। कभी जानना चाहकर भी नहीं जान पाती कि मनुष्य इतना आशा सजोकर, इतना समारोह करके क्या पा जाना चाहता हैं। जीवन तो एक गाड़ी है जिसे बस काल रूपी ध्येय तक घसीट कर ले जाना होगा, उसके लिये इतने विप्लव कैसे, इतना रक्तपात क्यों ? दो घड़ी सुख की मुस्कानों में बीतें, या दुख के क्रंदन में, या पाप-पुण्य की संकुचित परिधि में परन्तु अन्त में बँध जाना होगा उसी विकराल काल के आलिंगन में। फिर इस नश्वरता के लिये अधिकारों की मांग कैसी, अभिमान से जीना कैसा।'

'क्या कहती हैं मृणाल जी। इतना निराश होकर क्या पल भर भी मनुष्य दृढ़ होकर जीवन की उस गाड़ी को ढो सकेगा, जीवन में कभी भी क्या वह उन्नति कर सकेगा।'

मृणाल हँसने लगी, 'उन्नति क्या है हरीश बाबू मन का बहलावा ही तो। मनुष्य क्यों उन्नति करता है, किसके लिये

उन्नति करता है, अपने लिये, देश के लिये या विश्व के लिये। इसकी उलझनों में फँसकर वह सुख दुख की परिधि को लाँघ जाना चाहता है। शायद यही उसका यह महान सुख हो। विश्व के आदि काल को आप देखते हैं। कितना पिछड़ा हुआ उसे आप मानते हैं, उस दिन का मानव क्या आज के मानव से अधिक सुखी नहीं था। तब आकांक्षायें कम थीं, दुख भी कम थे। फिर क्या उनकी शान्ति वेदना की कोई घृणित वस्तु थी। फिर उन्नति क्या है? मशीन की भाँति कार्य करते करते स्वयं मशीन बन जाना ही तो। कोलाहल के बीच रहकर अपने को तिल तिल जला डालना ही तो। और उन्नति को ग्रहण करने को आतुर हो रहा है आज सृष्टि का कण-कण। उसी की बाँह-ग्रस्त करने को दौड़ पड़ा है आज प्रत्येक मानव।'

'दोष यह उन्नति का नहीं है मृणाल जी, दोष है हमारी नासमझी का, हमारे स्वार्थ का, उसके उपयोग का।'

सहसा हरीश चुप हो गया। सामने देखकर कहने लगा, हम 'आ पहुँचे हैं मृणाल जी, यहीं सभा होनी है।' उस दिन प्रातः जब सूर्य की प्रखर किरणें विश्व को आलोकित करने लगीं हरीश और मृणाल घर लौट पड़े।

१६

'यह हरि बड़ा कठोर लड़का है नीरू।' विक्षिप्त-सी माँ आर्तनाद कर उठीं।

'इससे अधिक जानकर तो तुम उसे पहचान नहीं पाईं माँ।'

'ऐसा नहीं नीरु, देखता है तू आज कैसा परिवतन उसमें हुआ है।' कहते कहते माँ दयार्द्र हो उठीं, 'कैसा उदास वह आजकल रहने लगा है, कितना गम्भीर हो गया है। उसकी चचंलता जैसे आज कहीं दब कर रह गई है। सारी सारी रात जाने कहाँ फिरता रहता है। थककर आता है तो आँखे लाल हुई रहती हैं, बाल बिखरे रहते हैं। मैं तो भय से काँप उठती हूँ। सन्देह से मर मर जाती हूँ। कल रात भर वह नहीं आया। आज सुबह आया तो अनजाने में ही। मैं भय से काँप उठी। स्वयं टोकने का लाख प्रयत्न करने पर मैं पूँछ ही बैठी, 'तू कहाँ रहा करता है हरि, क्या किया करता है जो खाने-पीने की भी सुधि त्याग दी है।'

वह वेदना-मिश्रित मुस्कान लिये मेरे पास आ बैठा। आँचल पकड़ कर मेरी गोद में सिर रख दिया कहने लगा, 'आज जीवन की सबसे कठिन परीक्षा दे रहा हूँ माँ, आशीर्वाद दो, सफल हो सकूँ।'

'कैसी परीक्षा की बात कह रहा है हरि।'

वैसी ही पड़ा-पड़ा हरीश कहने लगा, 'तुम नहीं समझोगी बहती-बहती नौका जब किसी चट्टान से टकराकर छिन्न-भिन्न हो जाती है तो नाविक कूल तक पहुँचने का कैसा प्रयत्न करता है। अपने जीवन भर का बल, अपने जीवन भर की शिक्षा वह उसी में लगा देना चाहता है। प्यारे जीवन की नैया भी डोल रही है माँ, बस पलट जाने की देर है।'

'सचमुच मैं समझ नहीं सकी नीरू, कहने लगी मैं नहीं जानती, तू क्या कर रहा है, परन्तु तेरा नीरू भैया भी तो यही सब करता है, उसे तो कभी ऐसा देख नहीं पाई, उसके अधरों से तो मुस्कान कभी विलीन नहीं हो पाती।'

क्षण भर को हरि उठकर बैठगया। कहने लगा, 'नीरेन

भैया से मेरी तुलना न करो माँ। अटल विशाल पर्वत की चंचल लहरों से समता क्या !'

'मैं कहने लगी, इस बूढ़े शरीर को आज अचानक किसी के सहारे की आवश्यकता आ पड़ी है हरि। मैं बहुत थक गई हूँ तू शादी क्यों नहीं कर लेता।'

हरीश हँसने लगा, 'नीरेन भैया की शादी करो तो कुछ सहारा तुम्हें मिल सकता है माँ! मेरी शादी करके तुम क्या पा जाओगी।'

'मैंने कह दिया, अपने नीरू के लिये तो मैंने ऐसी लड़की ढूंढ़ी है हरि जिसकी तुलना संसार की किसी लड़की से नहीं की जा सकती। वह उन सब से महान है। तू उसे जानता है नीरू ?'

नीरेन हंसने लगा, 'किस भाग्यशालिनी पर माँ का इतना प्यार उमड़ पड़ा है, सुनूँ भी तो।'

'नहीं अभी बताऊंगी नहीं, एक दिन तू स्वयं समझ जायगा।'

'एक बात और है नीरू।'

नीरेन मूक, माँ की ओर ताकने लगा।

'उन योगेश बाबू को तो तू जानता है, उन्हीं की वह लड़की है मुक्ता, तूने देखा है उसे! बड़ी भली लड़की है। उसी का सम्बन्ध हरीश से करने को वह सहसा आतुर हो उठे हैं। अपने साथ लड़की को भी ले आने को लिख रहे हैं। लिखा है, दो घड़ी माँ के चरणों की सेवा कर आशीर्वाद पा लेगी। परन्तु यह हरि है कि मानता ही नहीं। वह तो सदा का हठीला है। सदा ही मनमानी करता है। मेरे कहने से तो कभी वह मानेगा नहीं। तू ही समझा उसे, तेरी आज्ञा तो वह कभी टाल नहीं सकता।'

नीरेन मुस्कराने लगा, 'मैं हरि को जानता हूँ माँ, मैं उसे समझा लूंगा, तुम एक बार लड़की को बुलाओ, एक बार उसे अवश्य बुलाओ।'

१७

तीसरे ही दिन योगेश बाबू मुक्ता को लेकर आ पहुँचे। मुक्ता ने आंचल कन्धे पर डालकर माँ के चरणों पर माथा धर दिया। दो क्षण को माँ उसे देखकर मुग्ध सी हो गईं। कैसा रूप-लावण्य है उस मुक्ता में, कैसी मोहिनी है उसके नयनों में और मन ही मन एक बार वह उसे अपनी वधु मान बैठी।

उसी दिन संध्या को योगेश बाबू कार्य-वश चले गये और रह गई माँ के पास मुक्ता, संकोच और लाज से दबी-सी मुक्ता।

माँ के चरणों में वह रहने लगी। घर के समस्त कार्यों का भार एकबारगी ही अपने ऊपर लेकर वह नन्हीं-सी बालिका यहाँ वहाँ दौड़ी-दौड़ी फिरने लगी। प्रातःकाल अन्धकार की आच्छन्नता में ही मुक्ता उठकर माँ की आराधना का सामान जुटा देती। उद्यान से स्वयं पुष्प तोड़ लाती। धूप-दीप-नैवेद्य जलाकर माँ के सेवा-गृह में सजा देती, फिर चुपचाप बैठी माँ के उठने की राह में नयन बिछा देती। माँ देखती हैं तो आनन्द से विह्वल हो उठती हैं। बार-बार उसका माथा चूम

लेती हैं, कहती हैं 'मेरी सुन्दर सी मुक्ता कैसी भोली है, अब तुझे कभी अपने से विलग नहीं होने दूँगी। सदा छाया की भाँति अपने साथ रक्खूँगी! मैं तो अब बूढ़ी हुई। घर का इतना काम कर नहीं पाती, अब तो इसे तूही सम्भालना बेटी।'

मुक्ता चुप रह जाती। एक बार कृतज्ञता भरे नयनों से माँ की ओर निहार लेती, फिर माँ की पग-धूलि लेकर माथे पर लगा लेती।

स्वयं ही समस्त घर झाड़-पोंछ कर वह खाना बनाने बैठ जाती। नित्य भाँति-भाँति के भोजन बना कर वह माँ को मुग्ध करने लगी।

रात होते होते माँ उसे अपने समीप खींच लेती, अपने पास लिटा कर कहती, 'कहानी सुनेगी मुक्ता, हरि जब छोटा था, तब इसी प्रकार मेरे पास बैठा कहानी सुना करता था, तू भी सुनेगी कहानी।'

तब लाज से सिमटी सी मुकता कह देती 'सुनाओ माँ।'

और जब मुक्ता बहुत देर तक कहानी सुनते सुनते घोर निद्रा में लीन हो जाती तब माँ आनन्दातुर नयनों से उसकी ओर देखकर धीरे से मुस्करा देतीं।

हरीश को देखकर बड़ी लाज लगती है मुक्ता को। कहीं अकेला उसे देखती तो मुँह पर आँचल डालकर भाग जाती। हरीश उसे देखकर मुस्करा देता तो वह गड़ सी जाती। नयना पृथ्वी पर जाकर जम जाते, मानों उठेंगे नहीं, युग युग तक यहीं जमें रहेंगे।

समय बीतता गया, पल भागते गये, भागते गये। और एक दिन हरीश की पकड़ाई में आ ही गई मुक्ता। हँसकर कहने लगा, 'इस घर में तुम इतना लुकछिपकर नहीं रह सकोगी मुक्ता, कहीं न कहीं तो तुम्हें पा ही लूंगा।'

मुक्ता के मानों शब्द नहीं निकलेंगे। वह भाग जाना चाहती है, इन हरीश से दूर जाकर छिप जाना चाहती है। कैसी कठिन बेला में हरीश ने उसे आ घेरा है।

'मुझसे नाराज हो न मुक्ता, मैं बहुत बुरा हूँ न।'

न जाने कैसे मुक्ता कह सकी, 'नहीं ऐसा न कहिये, बड़ी लाज लगती है मुझे।' और नयनों की आतुरता हरीश कहीं देख न ले मानों इसी से आँचल माथे पर खींच लिया।

हरीश उसकी सरलता पर मुस्कराने लगा, फिर सहसा पूंछ बैठा, 'यह घर कैसा लगा मुक्ता।'

मुक्ता ने उत्तर नहीं दिया तो हरीश फिर पूंछ बैठा, 'बताओ न मुक्ता, इस घर में क्या सुख-शान्ति की क्षीण-सी रेखा का भी तुमने कभी अनुभव किया है।'

जाने कितने भार के नीचे से मुक्ता कहने लगी, 'माँ मुझपर बड़ा स्नेह रखती हैं, जी चाहता है सदा उनके चरणों में पड़ी रहूँ। उनपर जाने कैसी ममता सी हो गई है।।'

'बस माँ ही भली लगती हैं और कोई भी नहीं।'

कैसे प्रश्न हैं यह। एकबारगी मुक्ता घबरा गई। कैसे कहे वह उसे क्या भाता है, क्या अच्छा लगता है। वह तो लाज से गड़ गड़ जायगी। फिर जल्दी से कह दिया, 'नहीं, यहाँ का सब कुछ भला लगता है, मां भी, नौकर चाकर भी, घर की जड़ वस्तुयें भी, आप भी।' कहकर कानों तक लाल हुई मुक्ता मुँह पर आँचल ढांक कर जल्दी से भाग गई!

हरीश खड़ा उसे देखता रहा! वेदना में सनी सी एक उसांस धीरे से उसके अधरों पर आकर विलीन हो गई! दो क्षण को वह सोचता रह गया, कितनी सरल यह नारी है, कितनी दीन!

तभी आ पहुँची मां। हँसकर पूछने लगी, 'क्या बातें कर रहा था मुक्ता से रे हरि।'

'पूँछ रहा था मां कि उसे हमारा घर अच्छा भी लगा।'

मां प्यार से और पास खिसक आई, 'तब क्या कहा मुक्ता ने?'

कहने लगी, 'इस घर के सब लोग भले लगते हैं माँ भी, नौकर-चाकर भी, आप भी।'

आनन्द के वेग से मां के नयनों में नमी उमड़ आई। हरीश का हाथ पकड़ कर कहने लगी, 'देख हरि, कितनी भली लड़की है मुक्ता, जैसा रूप वैसा ही गुण। बता तो पसन्द है न तुझे, तू शादी कर सकेगा न उससे।'

सहसा हरीश आतुर हो उठा, 'नहीं मां मुक्ता बड़ी भोली लड़की है, बिलकुल निर्बोध बालिका सी। उसे मेरे पथ में घसीटने का प्रयत्न मत करो। यह राह बड़ा भयंकर है, इसके संघर्षों में आकर मुक्ता पिस जायगी।' दब जायगी! यह अप्रिय भार उस पर मत लादो, जिसे वह कभी सहन नहीं कर सकती। बताओ मां तब कौन सा सुख मैं उसे दे सकूँगा।'

'मुक्ता जो है, जैसी है वैसी ही भली है हरि, यदि मुक्ता मुक्ता न होकर कुछ और होती तो कदापि इतनी मधुर न होती, न कभी उस पर इतना मोह ही उमड़ सकता। इससे विमुख होकर मानों वह नारी-नारी न रह पाती।

परन्तु इससे पहले ही हरीश कमरे से बाहर हो गया!

मां अवाक् खड़ी उसे देखती रह गई। आज प्रथम बार अनजाने में ही न जाने क्यों उनका हृदय भय से काँप उठा।

× × ×

समय का चक्र चलने लगा। कौन किसके कितना पास खिसक आया और कौन किससे कितना दूर हट गया जीवन की झंझा में फंसकर कोई भी जान नहीं पाया।

एक दिन बड़े भोर ही जब हरीश जाने लगा तो मुक्ता उसकी राह रोककर खड़ी हो गई। आज उसने बिसरा दी वह लाज जो युग-युग से अपने हृदय में समेटे है। आतुर होकर बस केवल कह सकी, 'आप दिन-दिन भर और रात-रातभर कहाँ रहा करते हैं। माँ बहुत दुखी होती हैं।' एक आर्तनाद सा आज हरीश को मुक्ता के स्वर में लगा और विलुप्त-सा दो क्षण को वह उसे देखता रह गया। गम्भीर होकर कहने लगा, 'तुम हमारे घर में अतिथि बनकर आई हो मुक्ता! आज हो, कल लौट जाओगी। इस घर में कौन क्या करता है और उसको लेकर किसे सुख-दुख होता है, यह सब जानना तुम्हें शोभा नहीं देता और न तुम्हारे लिये यह उचित है। इस घर के प्रति कार्य में इतना अनुराग भरने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। मैं तो जो हूँ, जैसा हूँ, सदा वैसा ही रहूँगा। माँ के और तुम्हारे प्रयत्न मुझमें कभी परिवर्तन नहीं ला सकेंगे।'

मुक्ता को मानों भारी चोट लगी हो। आहत सी वह कहने लगी, 'मैं इस घर से जाने के लिये नहीं आई हूँ, यहीं मुझे रहना है, आपके और माँ के चरणों में जीवन व्यतीत करना है, ऐसा ही माँ कहती थीं।'

'वह माँ की अपनी बातें हैं मुक्ता, मेरी नहीं। मां तुम्हें रख सकतीं हैं, परन्तु मेरे साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध जोड़कर रक्खें ऐसा तो हो नहीं सकता कभी भी, नहीं हो सकता मुक्ता।' उदास नेत्रों से हरीश मुक्ता की ओर ताकने लगा।

'अच्छा ऐसा ही सही। इस बात को लेकर मैं आपसे

वाद विवाद करने नहीं आई हूँ! परन्तु खाना तो खाकर जाइये न।'

'नहीं।'

'मेरे लिये न सही, मां के लिये ही सही। आप पर उनकी कितनी ममता है। आपके लिये वह कितना कष्ट सदा सहती हैं। क्या उनकी उपेक्षा करना भी आप छोड़ नहीं सकते।'

परन्तु इससे पहले ही हरीश घर से बाहर हो चुका था। एक उनींदी सी उसांस हृदय में समेटे मुक्ता मौन खड़ी रह गई।

बहुत रात गये जब हरीश लौटा तो मुक्ता उसकी राह में नयन बिछाये, हथेली पर मुंह रक्खे, उसके कमरे के द्वार पर बैठी थी। हरीश एकबारगी चौंककर रुक गया। 'तुम अभी तक जाग रही हो मुक्ता।'

मुस्कराती हुई मुक्ता उठकर आंचल ठीक करने लगी, 'दो बजा है बहुत देर करदी आपने। आप ही की तो राह देख रही थी।

'मां कहाँ हैं।'

'माँ सो गई हैं।'

अब क्या कहे हरीश। मानों सब प्रश्न समाप्त हो गये हों। मुक्ता की तीक्ष्ण दृष्टि वह अपने मुख पर अनुभव करने लगा। फिर प्रश्न उसने दोहरा दिया, 'माँ सो गई हैं, तुम्हें भी सो जाना चाहिये था, बहुत रात बीत गई है। बताओ तो, अब तक जागकर तुम मुझे कौन से अपराध का दण्ड दे रही हो।'

'आप सुबह बिना खाये पिये चले गये तो मन दुखने लगा। फिर सोचा कि आपको खिलाकर ही सोऊँगी।'

हरीश को बड़ा भला लगा। कितना अपनत्व है इस मुक्ता में, दो पल को वह मुग्ध होकर उसे देखने लगा। अब उसने

देखी उसके नयनों में निशा की सी सघनता और उसके मुख पर प्रात की सी अरुणाई। कितनी ही देर बाद मन-मुग्ध सा वह कहने लगा, 'आओ मुक्ता क्या सारी रात यहीं बैठे रह कर बिता देने का विचार है। कितनी ठन्ड है आज, चलो मेरे कमरे में।'

मुक्ता हरीश के कमरे में चली गई। बोली, आप हाथ-मुंह धो डालिये। यह पानी ले आई हूँ। इतने में खाना गर्म कर लाती हूँ। रक्खा रक्खा कैसा बर्फ सा ठन्डा पड़ गया है।

तनिक देर में ही खाना लिये मुक्ता लौट आई। थाली हरीश के सामने रख दी। जैसे लाज से गड़कर कहने लगी, "खाइये न।'

'तुम बैठो मेरे पास।'

सिमटी सी मुक्ता उसी के पास बैठ गई।

हरीश कहने लगा, 'तुम हमारे घर अतिथि हो, मुक्ता। हम लोगों के लिये इतना कष्ट सहना, इतनी चिन्ता करना क्या उचित है। इतनी रात तक तुम जाग रही हो, क्यों किसके लिए, क्या पाया तुमने यह सब करके।'

'मैं कुछ नहीं जानती, बस इतना जानती हूँ कि यह सब बड़ा भला लगता है, इसमें बड़ा सुख मिलता है।'

'माँ तुम्हें प्यार करती हैं मुक्ता, तुम पर बहुत ममता रखती हैं। वह सदा इसी घर में तुम्हें बाँध कर रख लेना चाहती हैं। जानती हो मन ही मन वह तुम्हें अपनी वधु भी मान बैठी हैं। सोचती है अब कभी भी तुम इस घर से नहीं जाने पाओगी।'

मुक्ता सुनती रही चुपचाप।

'एक दिन मेरे मन की श्रद्धा भी बरबस तुम पर बह‌ स पड़ी। प्रयत्न करने पर भी तुम्हारी ममता की उपेक्षा न कर

सका। तुम पर मोह होने लगा। परन्तु फिर सोचा, मेरा मार्ग तुम अपना नहीं सकोगी। वहां तक पहुँचते-पहुँचते ही तुम्हारी कोमल भावनायें थककर चूर हो जांयगी। तुम पिछड़ जाओगी तो फिर कौन तुम्हें सहारा देकर उस ओर खींच सकेगा, तब कौन सा सुख तुम पा सकोगी।'

मुक्ता सुनती रही चुपचाप।

हरीश कहता गया, 'मैं अनजाने में ही तुमसे नेह करने लगा। तुम बहुत भोली हो, बहुत अच्छी हो मुक्ता, इसी से आज मैं पूर्ण रूप से अस्वीकार करता हूँ। किसी दिन मेरे विचारों को समझ सको तो एक बार मुझे क्षमा कर देना।'

और मुक्ता सुन रही थी चुपचाप।

कितनी ही देर दोनों मौन बैठे रहे फिर हरीश बोला, 'बहुत रात बीत गई है मुक्ता, अब जाकर सो रहो।'

'जाता हूँ, आप खाना खा लीजिये, आपके लिये स्वयं मैंने अपने हाथ से बनाया था।' कुछ गम्भीर हो मुक्ता धीरे से कमरे के बाहर हो गई।

१८

हड़ताल दिन-दिन बल पकड़ती गई। डेढ़ माह बीत गया। नित्य सभायें होने लगीं, जिनमें मजदूरों को उनका हित-अहित समझाया जाता, उनके संगठन की, एकता की बात कह जाती। दूसरे नगरों से आई हुई मजदूरों और श्रमजीवियों की सहानुभूति पढ़कर उन्हें सुनाई जाती और प्रत्येक घटना का साहसपूर्वक सामना करने का प्रोत्साहन दिया जाता।

नित्य जनता में सहस्रों परचे बाँटे जाते, जिन में मजदूरों तथा श्रमजीवियों की दलित दशा का एसा करुण वर्णन होता कि पढ़कर लोगों को रोमान्च हो आता। अनजाने ही वह कहने लगते, 'यह सब कैसा करुण है और करुण होते हुये भी कैसा सत्य है। जनता राह देखती, परचे निकलने में तनिक सी भा देर हो जाने पर देर हो जाती, कहीं मजदूर हार तो नहीं गये। बड़ी बड़ी तनख्वाह पाने वाले और मिल-मालिक इन्हें पढ़ते तो क्रोध से कांप उठते। आप ही आप बड़बड़ाने लगते, 'इन लोगों को गोली मार देनी चाहिये, जिन्दा जला देना चाहिये।' 'और जो मजदूर निरन्तर संघर्षों से थक कर चूर हो गये थे वह अपनी झुकी हुई कमर को कुछ सीधा करके सिर हिला-हिलाकर कहने लगते, मानो कोई गूढ़ उपदेश दे रहे हों, 'कुछ नहीं होने का, हम जानते हैं, कुछ नहीं होने का। सदियां से अत्याचार चले आये हैं, विरोध भी उठते रहे हैं, परन्तु कभी कुछ नहीं हुआ। यह सफेद बाल और झुकी हुई कमर देखते हो, विश्वास से कह सकते हैं. कभी कुछ नहीं होगा।'

युवकों का रक्त खौल उठता! उनकी बातें वह अनुसुनी कर देते। फिर नारा बुलन्द होता, मजदूरों की जय, पूंजी-वाद की जर्जीरें तोड़ दो' 'अत्याचार मुर्दाबाद' वृद्ध शून्य नेत्रों से उनकी ओर देखते रहते। उनकी समझ में कुछ भी न आता।

धीरे-धीरे सभाओं में मजदूरों की संख्या बढ़ने लगी। पांच मिलें बिलकुल बन्द हो गईं। नगर में चहुँओर यही चर्चा चलने लगी।

समझौते के लिये नीरेन और नीलिमा कई बार मिल मालिकों के पास जा पहुँचे, परन्तु असफल होकर लौट आना

पड़ा। वह धमकी देते, हम वर्षों तक मिलें बन्दकर सकते हैं, हमें परवाह नहीं। परन्तु तुम लोग अपने मजदूरों की सोचो, यह लोग खायंगे कहां से, पहनेंगे कहां से! क्या उनके बच्चे भूख से तड़प कर नहीं मर जायगें। इस प्रकार कितने दिन बैठकर वह खा सकते हैं।' परन्तु नीलिमा समझ जाती, बस कुछ दिन और, फिर विजय हमारी है! कोई भी हमारी विशाल शक्ति से टक्कर नहीं ले सकता।'

मृणाल और हरीश मजदूरों के खाने का प्रवन्ध करने लगे। उनके घर जा-जाकर उनकी रोगिणी पत्नी और पीड़ित बालकों की देख-रेख करने लगे। समस्त दिन कार्य में लगे रहने से वह थककर चूर हो जाते। हरीश को बड़ी दया लगती, 'तुम दो घड़ी विश्राम कर लो न मृणाल, बीमार पड़ जाने से बड़ा विघ्न पड़ेगा!'

मृणाल हँस देती, 'तुम नहीं जानते हरीश कौन सी अदृश्य शक्ति मेरे अन्तर में छिपी बैठी है, यदि एक बार उसे पहचान जाओगे तो कभी ऐसी आशंका नहीं कर सकोगे!'

हरीश चुप हो जाता।

धीरे-धीरे गलियों में, सड़कों पर और चौपालों में अच्छा खासा समारोह होने लगा। नीरेन अपना आशय समझाता फिरने लगा, 'हम पशु नहीं हैं, मनुष्य हैं। हम मनुष्य मात्र का अधिकार मांगते हैं। हम मनुष्यों की तरह जीना चाहते हैं पशुओं की तरह मर जाना नहीं चाहते। जो हमारे कन्धों पर बैठकर अज्ञानता से हमारी आँखे बन्द कर लेना चाहते हैं, हम उन्हें दिखा देंगे कि हम अन्धे नहीं हैं हम सब कुछ देखते है, सब समझते हैं। अब हमें धोखा नहीं दिया जा सकता। हम सदा से दबते आये हैं, मौन होकर सब कुछ कहते आये हैं। इसीसे उनके अत्याचार बढ़े

और वह हम पर हावी हो गये! परन्तु अत्याचार सहन करने की एक सीमा होती है, जिसके पीछे नहीं दबा जा सकता। वही चरम सीमा आज आ पहुँची है, अधिक अब सहन नहीं हो सकता। हमें विद्राह करना है, पूंजीवाद की जड़ तक उखाड़ फेकना ; । हम उन्हें दिखा देना चाहते हैं कि हम केवल पशुओं की भाँति अपना पेट ही भर लेना नहीं चाहते, हम संसार के शिष्ट मनुष्यों की भांति शिष्ट समाज में भी रहना चाहते हैं। सुख उन्हीं मुट्ठी भर पूँजीपतियों का अधिकार नहीं है, मानव मात्र का यह अधिकार है। हमें उन स्वार्थ के पुतलों को जता देना चाहिए कि गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने पर भी, जिसमें उन्होंने हमें जकड़ रक्खा है, हम बुद्धि में और विचारों में उनसे कहीं ऊँचे हैं। क्या पेट भरने के सिवा हमें किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं। क्या पूंजापतियों के विलास के लिये हमें गन्दी नालियों में पड़े-पड़े सड़कर मर जाना चाहिए। क्या उनका खिलौना मात्र ही बन जाने के लिए ही, क्या उनके इशारों पर नाचने के लिए ही हम संसार में आये हैं। नहीं, आज हमें विद्रोह करना है। हमें जावन के इस गन्दे दलदल से निकल कर भावी जीवन के लिए एक पुल बांधना है। वही है हमारा ध्येय। वही है हमारा लक्ष्य! उठो, और उठकर एक साथ अपने अधिकारों की मांग करो। विजय हमारी राह देख रही है।'

तब नारा बुलन्द होता 'मजदूरों की जय' 'पूंजीवाद की जजीरें तोड़ दो' 'अत्याचार मुर्दावाद।'

कभी नीलिमा समझाने लगता, हम दान नहीं अपना अधिकार माँगते हैं, अपना हिस्सा चाहते हैं। कभी सोचा है आपने, छोटी-छोटी गन्दी गलियों में आपकी नन्हीं-नन्हीं कोठरियाँ सील और बदबू से क्यों भर जाती हैं! ज्वर की

पीड़ा से मृत्यू शय्या पर पड़ी आपकी पत्नी क्यों अर्तानाद कर उठती है और भूख से तड़पकर आपके बच्चे क्यों फफक फफक कर रोने लगते हैं, और उस ओर उन पूंजीपतियों की अट्टालिकाओं में क्यों नित्य बसन्त के उत्सव मना करते हैं, उनकी पत्नी नित्य नये-नये उपहार पाकर क्यों मुग्ध हो जाती हैं। उनके मोटरों में बैठे हुए बच्चे, मिठाइयां खाते और खिलौनों से खेलते हुए क्यों मनमानी किया करते हैं। कभी सोचा है आपने समस्त दिन काम करने पर भी आप पर क्यों मार पड़ती है। और वेतन देकर क्यों आपको निकाल कर बाहर कर दिया जाता है और उधर बिना काम किये ही यह पूँजीपति क्यों अपनी तिजोरियाँ सोने चाँदी से भरा करते हैं। काम आप करते हैं, फिर लाभ यह पूंजीपति क्यों लेते हैं आप ही लोगों में वह क्यों नहीं बाँटा जाता। जानते हैं आप इसका कारण ? इसका कारण है आप लोगों का चुपचाप अत्याचार सहते जाना। सहकर चुपचाप दबते जाना। नहीं अब हमें नहीं दबना है, हमें विरोध करना है। तभी हमें कुछ मिल सकेगा, तभी हम उठ सकेंगे। हमें घृणा है इन पूंजीपतियों से, उनके स्वार्थों से, उनके विलासों से। आओ एक बार उठो, उठकर बर्बरता की जंजीरें तोड़ डालो। तुम्हारे हाथ में शक्ति है। यह मुट्ठी भर पूंजीपति तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। यह मिलें तुम्हारी हैं। एक दिन तुम इनके स्वामी बनोगे।'

मजदूरों को नई चेतना मिलती। नारा बुलन्द होता, 'मजदूरों की जय' 'पूंजीवाद की जजीरें तोड़ दो,' 'अत्याचार मुर्दाबाद।'

लोगों ने जितनी आशा की थी हड़ताल उससे अधिक

चल गई। मिल मालिक किसी भाँति समझौते को तैयार न होते थे।

तभी एक दिन लोगों ने सुना, ऊँची-ऊँची मजदूरी देकर दूसरे शहरों से मजदूर बुलाये जा रहे हैं। नीलिमा सन्न रह गई। क्या भाई-भाई का अधिकार छीन सकेगा। कैसा धोखा, कैसा प्रपन्च है यह।

धीमें-धीमें मिलें चलने लगीं। मजदूर दरवाजों पर रास्ता रोक कर पड़ गये। जो जा सकते थे वह तो उनकी छाती पर पाँव रखकर चले गये जो नहीं जा सकते थे उन्हें ढकेल कर अन्दर ले जाया गया।

ऐसे ही दो दिन चलता रहा। एक दिन पुलिस ने अचानक आकर घेरा डाल दिया। परन्तु मजदूर न उठे! लाठी-प्रहार हुआ, मजदूर बैठे रहे। सिर फट गये रक्त बहने लगा। मजदूर बैठे रहे।

तभी अचानक मिलों में काम करते मजदूरों में एक विप्लव सा उठा, एक आंधी आई। वह चिल्ला उठे, 'हम अपने भाइयों के रक्त से होली खेलने नहीं आये हैं, हम उनका अधिकार छीनने नहीं आये हैं। हम काम नहीं करेंगे। हम लौट जाना चाहते हैं।'

उसी दिन से हड़ताल पुनः आरम्भ की गई।

दिन बीतते गये। धीरे-धीरे सारा इकट्ठा किया हुआ धन समाप्त होने लगा। अब क्या होगा? भूखे मजदूरों के पेट कैसे भरेंगे। उनके रोगी बालकों की दवा कैसे होगी। कहीं वर्षों की साथ टूट कर बिखर न जाय। सबों को चिन्ता होने लगी। हरीश, नीलिमा जितना दे सकते थे दिया, फिर जनता से अपील की गई। परचे बाँटें गये। बड़े बड़े पोस्टर बनाकर जलूस निकाले गये। धीरे-धीरे दूसरे नगरों से

मजदूरों तथा श्रम जीवियों की सहानुभूति के साथ चन्दा आने लगा।

परन्तु ऐसे कब तक चलता। एक ही सप्ताह में सब समाप्त हो गया। मिल-मालिक अपनी बात पर अड़े रहे। मजदूरों को आधा पेट भोजन मिलने लगा। उनमें भिन्न-भिन्न दल बनने लगे, भिन्न-भिन्न बातें होने लगीं। सब एकबारगी साहस-हीन से दीखने लगे। बड़े बूढ़े कहने लगे, हम जानते थे यही होगा, सदा ऐसा ही हुआ है, अब भी ऐसा ही होगा। चंचल लहरें कभी पर्वत को नहीं उखाड़ सकी हैं। आतुर झंझा कभी पृथ्वी से टक्कर नहीं ले सकी है। आज युवकों के बीच से नारे बुलन्द नहीं होते। सुनकर वह चुप रह जाते हैं। उनका उत्साह ठन्डा पड़ने लगता है।

नीलिमा और मृणाल बाजारों में, गलियों में, सड़कों पर बड़े-बड़े जलूसों के साथ झोली फैलाये धन इकट्ठा करने लगीं।

हरीश और नीरेन भी साथ रहते। जनता को वह मजदूरों के दुखों की कहानी सुनाते जाते।

जनता ने सहानुभूति की, परन्तु धन न दिया। हरीश का साहस छुटने लगा। एक दिन सहसा वह आतुर हो उठा, ऐसे कब तक चलेगा भैया। धन समाप्त हो रहा है। आधा भोजन करके मजदूर रह रहे हैं। धीरे-धीरे भिन्न दल बनते जा रहे हैं। चुपके चुपके उनमें बातें होती हैं। धन के लालच में हमारे दल के लोगों को मिल मालिक तोड़ लेना चाहते हैं। अधिक दिन तो ऐसे नहीं चलेगा भैया।'

नीरेन उदास नहीं हुआ, मुस्कराया भी नहीं। वैसे ही गम्भीर बना कहने लगा, चलेगा हरि, सृष्टि के अन्त तक भी चल सकेगा। हार हमारी नहीं होगी। जानते हो सत्य की पराजय कभी नहीं हुई।'

हरीश को मानों विश्वाश हो गया। नवीन स्फूर्ति से उसका मन भर उठा। और नीलिमा ने मन ही मन उस अटल विश्वास के आगे सर झुका दिया।

❀ ❀ ❀

एक सप्ताह से नीरेन सो नहीं पाया तो मन भारी होने लगा। नीलिमा कहने लगी, आप थोड़ा विश्राम कर लीजिये नीरेन बाबू। एक सप्ताह से आप सोये नहीं हैं, ठीक से खा पी भी नहीं पाये हैं, इस तरह तो आप पागल हो जायेंगे।'

'सोना चाहता हूँ नीलिमा, परन्तु जाने कौन सी अदृष्य शक्ति बार-बार झकझोर कर मुझे उठा देती है। आज मैं बहुत थक गया हूँ, बहुत थक गया हूँ नीलिमा।'

'नहीं ऐसे नहीं चलेगा। आप मेरे यहाँ चलिये, आज रात वहीं सो लीजियेगा।' नीलिमा अनुरोध करने लगी।

अपने कमरे में जाकर नीलिमा ने नीरेन को पलंग पर लिटा दिया। फिर स्वयं भी उसी के पास आकर बैठ गई। कहने लगी 'मैं जानती हूँ, दो दिन से आपने कुछ भी खाया नहीं है। मैं आपके लिए खाना लिए आती हूँ।'

नीलिमा उठकर जाने लगी तो नीरेन ने रोक लिया। 'नहीं नीलिमा रहने दो, आज मन नहीं कह रहा है।'

'मजदूरों का हिस्सा मैं आप पर नहीं गवांऊगी जो भी आप खायगें, पिता जी के धन से खाँयगे।'

नीलिमा खाना ले आई। नीरेन कहने लगा, 'बैठो नीलिमा।'

नीलिमा वहीं उसके पास आकर बैठ गई।

'तुम नहीं खाओगी।'

'नहीं।'

'स्वयं उपवास करके अतिथि को भोजन कराना कौन सी रीति है नीलिमा।'

तब नीलिमा मूक बनी नीरेन के साथ खाने लगी!

खाना खाकर नीरेन लेट गया। नीलिमा भी उसी के पास आकर बैठ गई।

'आज जाने क्यों भय लग रहा है नीलिमा,' नीरेन कहने लगा, 'मन में कुछ छिछला सा होकर झाँकने लगता है। पराजय का मुझे भय नहीं है। हार हमारी कभी नहीं हो सकती, ऐसा मुझे विश्वास है। परन्तु आज मैं देखता हूँ क्षुधा से पीड़ित नन्हें-नन्हें बच्चों की ललचाई निगाहों को। आज मैं सुनता हूं ज्वर छिन्न-भिन्न नारी की चीतकारों को तो मन करुणा से भर आता है। सोचता हूं, क्या होगा इन सब का, कितने दिन ऐसे ये लोग चल सकेंगे।'

इन दो वर्षों में आज प्रथम बार ही नीलिमा को लगा मानों नीरेन टूटकर गिर पड़ना चाहता हो। दो क्षण को स्तब्ध होकर वह उसकी ओर देखती रह गई। कहने लगी, 'इस समय आपके मन की दशा ठीक नहीं है। आप सो जाइये। इस विषय पर विचार कल हो सकता है।'

नीरेन मूक नीलिमा की ओर देखता रहा। नीलिमा कहने लगी, 'अच्छा बन्द कीजिये आँखें, मैं आपको सुलाये देती हूँ।'

नीरेन मुस्कराने लगा, 'मैं कोई बालक हूँ नीलिमा जो तुम मुझे सुलाओगी।'

नीलिमा हँसने लगी, 'बालक नहीं हो तो क्या बूढ़े हो गये हो। याद है उस दिन कह रहे थे, तुम्हारे सामने मैं एक निर्बोध बालक की भाँति रह जाता हूँ नीलिमा, लगता है मानों मेरी अपनी मां आँचल फैलाये सम्मुख आकर खड़ी हो गई हो। क्या इतनी जल्दी ही भूल गये उस दिन की वह बात।'

नीरेन ने स्वीकार कर लिया, 'अच्छा सोता हूँ। परन्तु तुम उठना नहीं नीलिमा, इसी प्रकार मेरे पास बैठी रहना।'

उत्तर में नीलिमा धीरे से मुस्करा दी और तनिक देर में ही नीरेन घोर निद्रा में लीन हो गया।

१६

आज हरीश ने सुना, मजदूर कल हड़ताल समाप्त कर देना चाहते हैं। उनकी आशाओं पर कुठाराघात हो गया है। वह अधिक दिनों तक नंगे भूखे नहीं रह सकते! धनिक मिलें बन्द करके भी खा सकते हैं। इसमें उनकी कोइ क्षति नहीं होगी! वह हमारी माँगें कभी पूरी नहीं करेंगे!

हरीश ने सुना, वह सन्न रह गया! क्या इतने दिनों का प्रयास, उतने दिनों की साधना व्यर्थ चली जायगी! क्या हमारी पराजय होगी। क्या भूखों को रोटी नहीं मिल सकेगी नगों को कपड़े नही मिलेंगे! मजदूर क्या सदा अत्याचारों से पिसते रहेंगे! क्या उन्हें उनके अधिकार कभी नहीं मिलेंगे, अब क्या होगा? अब क्या होगा?

मृणाल और नीलिमा को लिये नीरेन पास के ग्राम में चन्दा एकत्रित करने गये हैं। वह किससे कहे, किससे प्रेरणा पाये! मन ही मन वह दृढ़ होने का प्रयत्न करने लगा, उसके अन्दर से बार-बार कोई चिल्लाने लगा, 'नहीं, हमारी पराजय नहीं होगीं, कभी नहीं होगी! मजदूर हड़ताल नहीं तोड़ेंगे! उन्हें लड़ना है, रोटी का अधिकार प्राप्त करना है। उसके प्रयास कभी असफल नहीं होंगे।'

मन ही मन वह साहस बाँधने लगा। मजदूरों की बस्तियों में जाजाकर उन्हें समझाने लगा। मजदूरों ने आज प्रश्नों की झड़ी लगा दी। कोई कहता, 'हम अधिक सहन नहीं कर सकते। हमारे बच्चे मर गये हैं, पत्नी बीमार हो गई है। अपने परिवार की हत्या करके हम दृढ़ता नहीं कर सकते। कोई और कहने लगता, 'हमने लाठियाँ सही, भूखे रहे, परन्तु हमें क्या मिला, मिल-मालिक कभी हमारी मांगे पूरी नहीं कर सकते। हम भूखे मर जाना नहीं चाहते।'

उसी दिन संध्या समय सभा करने का निश्चय किया गया।

अनेक वाद-विवादों के बीच खड़ा होकर हरीश समझाने लगा, 'क्या हमारे इतने दिनों की साधना इतने दिनों का प्रयास व्यर्थ चला जायेगा। एक दिन एक साथ मिल कर जो प्रतीक्षा आपने की थी क्या उसे यूँ क्षण भर में तोड़ डालेंगे। अब अधिक दिनों की बात नहीं है, हम कभी पराजित नहीं हो सकते। आपने इतना सहा है, कुछ दिन और सह लीजिए! मिल-मालिकों में अब अधिक शक्ति नहीं है। उनके पाँव काँप रहे हैं। वह गिरा ही चाहते हैं। जो कष्ट आपने सहे हैं, उसका आपको फल मिलेगा, क्या आप अपनी मांगे छोड़ देगें, जीने का अधिकार छोड़ देंगें। क्या आज हम इतने पंगु हो गये हैं, इतने निशक्त पड़ गये हैं। क्या हमारे शरीर का रक्त आज ठंडा पड़ गया है। यदि इस बार आपकी पराजय हुई तो हजारों वर्षों के लिए आप गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिये जायेगा! बर्बरता आपके कन्धे पर बैठ जायगी! उठिये, एक बार साहस कीजिये! विजय आपकी होगी।'

तभी पुलिस ने आकर घेरा डाल दिया। लाठी-प्रहार होने लगा। हरीश ने देखा आज सहसा एक नयी प्रेरणा,

एक नयी चेतना मजदूरों में भर गई ! आज जाने कैसी अथाह शक्ति से वह ओत-प्रोत हो उठे हैं । आज एक अनोखा विश्वास उनके मुख पर झलक उठा ! वह जोर-जोर से नारे लगाने लगे, 'मजदूरों की जय हो !' 'पूंजीवाद की जजीरें तोड़ दो' 'अत्याचार मुर्दाबाद ।'

हरीश कठोर स्वर में कहता गया, 'संसार आगे बढ़ रहा है । चारों ओर आग लगी हुई है ! आज का प्रत्येक भारती अपने अधिकारों की मांग कर रहा है ! फिर हमी क्यों पिछड़े रहें, हमी क्यों चुपचाप बैठे रहें, एक रोटी के टुकड़े के लिए तड़पते रहें ! रूस में क्रान्ति हुई, फ्रांस में क्रन्ति हुई, विद्रोह हुये और उन्हें उसका फल मिला । मजदूरों को उनके अधिकार मिले, रोटी मिली, वस्त्र मिले । विश्व में चिनगारी जल रही है, लपटें उठ रही हैं । उठो और तोड़ दो पूंजीवाद की जंजीरों को, जला डालो अत्याचारों को !'

लाठी प्रहार होता रहा ! सिर फटते रहे । रक्त की नदियाँ बहती रहीं ! परन्तु मजदूर जुटे, रहे, नारे बुलन्द होते रहे !

हरीश दूने उत्साह से कहता गया, 'आज हम पर लाठी प्रहार होता है, गोलियां चलाई जाती हैं, हमारे रक्त की नदियाँ बहाई जाती हैं । क्यों ? क्या अपराध है हमारा ! हम रोटी मांगते हैं, वस्त्र मांगते हैं, अपना अधिकार मांगते है. क्या इसी लिये हमारा रक्त बहाया जाता है । इसीलिये हम पर अत्याचार किये जाते हैं । परन्तु अब समय बदल रहा है ! अब शक्ति तुम्हारे हाथ में आने वाली है । अब पूँजीपतियों पर तुम्हारा अधिकार होगा ! आज जो तुम पर लाठी-प्रहार कर रहे हैं, कल तुम उनपर लाठी-प्रहार करोगे ।'

तभी आज्ञा हुई, 'फायर ।'

गोली चलने लगी। मजदूर आहत हो होकर गिरने लगे! उनके पाँव उखड़ गये। भगदड़ मच गई!

हरीश ने मुस्कराते हुये हाथ बढ़ा दिये। हथकड़ियाँ डाल दी गईं। नारे बुलन्द होते रहे।

हरीश गिरफ्तार हो गया परन्तु मजदूरों में आज एक नवीन प्रेरणा, नवीन शक्ति भरता गया। वह एक स्वर से चिल्ला उठे, हड़ताल होगी, हम अपने अधिकारों की मांग कभी नहीं छोड़ सकते! हम भूखे मर जायँगे, परन्तु हड़ताल नहीं तोड़ेंगे।'

संध्या समय नीरेन ने सुना तो अवाक् रह गया! गर्व से एक बार उसका मस्तक बहुत ऊँचा उठ गया! वह सीधा जाकर माँ के चरणों से लिपट गया! आतुर होकर कहने लगा, मुझे क्षमा कर दो माँ, हरीश की चिन्ता नहीं है! आज उस पर मुझे गर्व है, परन्तु तुम क्या उसका विछोह सहन कर सकोगी माँ।'

माँ गर्व से मुस्कराने लगी, 'क्या कहता है रे नीरू! मैं यह तो नहीं जानती कि यह सब अच्छा हुआ या बुरा, परन्तु इतना जानती हूँ कि जब देश के अन्य व्यक्ति भूखे मर रहे हैं, वस्त्र हीन होकर हड्डियों के ढांचे से रह गये हैं तो हरि को शान्ति और सुख से रहना कभी शोभा नहीं देता! मैं सच कहती हूँ नीरू यदि हरि आज इतने रक्तपात और दमन के पश्चात् भी सकुशल चला आता तो उसे मैं कभी स्वीकार न कर पाती! मेरे मन का ममता-मोह जीवन भर के लिये एक गहन उपेक्षा में परिणित हो जाता। मैं उसे कभी प्यार न कर पाती। आज उसने मुझे बचा लिया नीरू! आज उसने मेरी लाज रक्खी है, अपने नीरू भैया की लाज रक्खी है।' माँ के नयनों में अश्रु उमड़ आये!

और नीरेन ने आदर से उनके चरणों पर माथा रख दिया।

२०

ढाई मास की निरन्तर हड़ताल के पश्चात सहसा मिल-मालिकों ने हार मान ली। नव उत्साह, नवीन स्फूर्ति भरे खुशी-खुशी मजदूर मिलों का लौट चले। उनके वेतन बढ़ गये। उनकी गन्दी कोठरियों की मरम्मत होने की, और उनकी बस्तियों में निशुल्क दवाखाने खुलने के आश्वासन मिल गये। उनकी खुशी और जयनाद एक बार नगर भर में गूँज उठे। जनता मानों उनके गर्व से फूलकर मुस्करा उठी।

संध्या की बेला में हरीश को मुक्त कर दिया गया। सहस्रों मजदूर उसके स्वागत के हेतु जा पहुँचे। विशाल जलूस निकाला गया! शनः-शनः भीड़ बढ़ती गई। नारे गूँजते गये और रात्रि के अँधियारे में बड़े समारोह के साथ हरीश घर पहुँचा! माँ ने देखा, अनायास ही उनके अश्रु उमड़ आये! ममता और गर्व से मस्तक ऊँचा कर वह दौड़ पड़ी उसकी ओर! हरीश अनन्त तक फैले लोगों के बीच खड़ा कह रहा था, आज विजय हमारी नहीं हुई, विजय हुई है पूँजीवाद पर साम्यवाद की, समाज की। विजय हुई है असत्य पर, अत्याचोंर पर सत्य की।'

नारे बुलन्द होने लगे, 'मजदूरों की जय' 'पूँजीवाद की जंजीर तोड़ दो' 'अत्याचार मुर्दाबाद!'

— — —

२१

प्रेम का प्रवाह जल-प्रपात से भी अधिक वेगशाली और भयंकर होता है। इसमें बांध काम नहीं देता। जहां एक बार भी बांध टूट गया, विप्लव की झंझा सा प्रवाह अपना अन्तिम उग्ररूप धारण करता है, तब कंगारे टूट पड़ते हैं, बड़े-बड़े पत्थर बह जाते हैं, चट्टानें चटखने लगती हैं!

उद्यान में फौवारे के पास बैठी मृणाल आज क्षितिज की कालिमा के पीछे झांक-झांक कर कुछ देखने का प्रयत्न करने लगी! अनजाने में ही शून्य में उसके नेत्र गड़ गये जाने कितनी देर वह भाव हीन मन लिये चन्द्रमा की सिनग्धता में बैठी रही! तभी आ पहुँचा हरीश। मृदुल स्वर में कहने लगा, 'तुम यहां बैठी हो मृणाल, सारे घर में तुम्हें ढूंढ़ आया हूँ।'

वेदना भरी मुस्कान लिये मृणाल उठ खड़ी हुई, 'आईये हरीश बाबू, अचानक क्या कोई बहुत आवश्यक कार्य आ पड़ा है।'

'क्या काम का झमेला लेकर ही कोई किसी के पास आ सकता है मृणाल !'

'नहीं, वैसे ही कहा था मैंने, आइये बैठिये यहाँ।'

हरीश मृणाल के पास ही बैठ गया, मृणाल चुप हो रही। जाने कितने निस्तब्धता के क्षण बीत गये ! पलकहीन नेत्रों से हरीश चन्द्र की ओर निहारने लगा। आज जाने कैसी अदृष्य शक्ति से ओत-प्रोत हो वह उसकी ओर आकर्षित होने लगा। वह चकोर बेसुध होकर चन्द्र को पाने का प्रयत्न कर रहा है। कभी क्लान्त सा चक्कर नीचे गिरने लगता है, परन्तु फिर उसे आलिंगन में भरने को दौड़ पड़ता है। उसी ओर संकेत करके हरीश कहने लगा, 'देखो मृणाल, कैसी साधना है इस चकोर की। जानता है कि उसे पा नहीं सकेगा, परन्तु फिर भी उसी के पीछे दौड़ रहा है। फिर भी उसी को पाने का प्रयत्न कर रहा है, कितना दीन है बेचारा।'

मृणाल कहने लगी, 'मनुष्य की भी तो ऐसी ही गति है हरीश बाबू, वह सदा उसी को पाने का प्रयत्न करता है जिसे वह पा नहीं सकता ! जो उसकी परिधि से बाहर है, जिसके पास तक पहुँचते-पहुँचते वह थक कर चूर हो जाता है। परन्तु वह फिर भी उसके पीछे दौड़ता है, अपना सब कुछ खोकर भी ! और जो लोक-लाज त्याग कर, अपने को समर्पण करने उसके चरणों पर लौट पड़ता है उसे वह निष्ठुरता से ठुकरा देता है।'

हरीश को लगा मानों मृणाल का स्वर धीमे-धीमे संगीत की नाईं कहीं बहुत दूर से आ रहा हो। उसे लगा मानों मृणाल वेदना के किसी गुरुतम भार से दबी जा रही है, एक बार आशंका से उसका मन काँप उठा। पूछने लगा,

'इधर कई दिनों से बहुत उदास दीखती हो मृणाल, क्या जान नहीं सकता तुम्हारी व्यथा का कारण !'

'जानते हैं हरीश बाबू ! दीपक पर पतंगे आकर क्यों जल जाते हैं। क्यों खुशी अपने पंख जला डालते हैं। लोग कहते हैं उनकी वेदना की सीमा नहीं। परन्तु जल कर उसे जो सुख मिलता है, जो आनन्द आता है, उसे तो वह कभी भी देख नहीं पाते, कभी देख भी नहीं पायेंगे ! सृष्टि के अन्त तक उनके लिए वह जलन रह जायगी केवल प्रतारणा, असहनीय पीड़ा।'

अनन्त गहराइयों तक एक बार हरीश का हृदय विक्षुब्ध हो उठा। मृणाल की बात सरल थी परन्तु उसके अन्दर जो एक नारी हृदय का आर्त बुभुक्षित चीत्कार था, उसने एक-बारगी कुछ देर के लिए हरीश को मूक बना दिया। जाने कब किन निर्दय हाथों ने इस नारी का हृदय छिन्न-भिन्न कर डाला है, जो जोड़े नहीं जुड़ता।

खोया-सा हरीश कहने लगा, 'एक बात पूँछना चाहता हूँ मृणाल।'

'पूँछिये।'

'सच-सच बता सकोगी।'

'शायद बता सकूं।' मृणाल के हृदय से एक धीमी सी उसांस निकल गई और मानों उसी को छिपाने के लिए सामने के पेड़ से दो गुलाब के फूल तोड़कर वह उनकी ओर निहारने लगी।

'जीवन में कभी भी क्या तुमने किसी को अपनाना चाहा है, किसी से प्यार किया है मृणाल ?'

मृणाल मूक होकर उसकी ओर देखने लगी। यह हरीश कैसा है जो एकबारगी उसके इतना समीप आ जाना चाहता

है, उससे बिलकुल सटकर खड़ा होना चाहता है। अनजाने में ही यह कैसा प्रश्न उसने पूँछ डाला! विक्षिप्त सी मृणाल मौन रह गई।

तब हरीश कहने लगा, 'यदि बताना न चाहो तो मैं तुम्हें बाध्य नहीं करूँगा मृणाल! तुम्हें कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता था, क्षमा करना।' हरीश चुप हो गया!

'बताऊँगी हरीश बाबू आपको सब कुछ बता दूँगी। मान-अपमान, लोक-लाज, आज सबको तिलांजली देकर बैठी हूँ। जीवन में अब रह ही क्या गया है, केवल शून्य है, जिसका कभी कोई महत्व नहीं हुआ! एक दिन पति को खोकर सोचा था कि अब किसी के आगे प्रेम की भिक्षा मांगने नहीं जाऊँगी। परन्तु जानते हो अपने नीरेन भैया को। उन्हीं पर अनजाने में एक दिन मेरा स्नेह उबल पड़ा। जाने कैसी प्रेरणा से प्रेरित होकर मैं उस ओर खिंच गई। मन ही मन एक दिन अपना सर्वस्व उन्हें सौंप बैठी। मैं जानती हूँ यह राह बड़ी कटीली है। आज मैं कैसा कठिन प्रयास करने जा रही हूँ। परन्तु क्या करती लाचार हो गई। मन पर तो अपना कोई वश नहीं है हरीश बाबू।' मृणाल शून्य होकर आकाश की ओर देखने लगी।

अवाक्-सा हरीश उसको ओर निहारने लगा। आज जिसे पाने को यह नारी आँखें मूँद कर दौड़ पड़ी है क्या जीवन में कभी भी उसे पा सकेगी। उन नुकीली, अटल चट्टानों से क्या ठोकरें खाकर वह गिर नहीं पड़ेगी। कैसा है इस नारी का भाग्य! दयालु होकर सहसा हरीश करुण हो उठा, 'जानती हो मृणाल आज किसे पाने का तुम प्रयत्न कर रही हो। नीरेन भैया तो संसार में बिलकुल अकेले हैं। जीवन में

कभी भी कोई उनके मन तक नहीं पहुँच पाया। फिर जानती हो क्या अन्त होगा तुम्हारी इस आकांक्षा का ?'

'नहीं जानती हरीश बाबू ! जानना भी नहीं चाहती। एक दिन नीलिमा जीजी ने भी मुझसे यही बात कही थी, उस दिन भी मैंने उसे स्वीकार नहीं किया था और आज भी उसकी उपेक्षा करती हूँ। मैं उन्हें प्यार करती हूँ, बस यही मेरे लिए बहुत है। इससे अधिक की मुझे इच्छा भी नहीं है, केवल इसी विश्वास को लेकर मैं जी सकती हूँ।' मृणाल के नयनों से दो विन्दु अश्रु निकल कर हरीश के हाथों पर बह पड़े।

हरीश एकबारगी चौंक उठा, 'रोती हो मृणाल।'

'नहीं, रोऊगी क्यों हरीश बाबू ! रोने को जीवन में है ही क्या !' मृणाल धीरे से मुस्करा दी परन्तु उसके पीछे जो अथाह वेदना भरी थी, लाख प्रयत्न करने पर भी वह हरीश से छिप न सकी।

हरीश के कण-कण में एक चीत्कार सा भर उठा। जाने कितनी दुखमय सुखमय भावनायें उसके हृदय में पास-पास आकर खड़ी होने लगीं। कैसी यह नारी है। इसमें आँसू नहीं है, क्रंदन नहीं है, विद्रोह भी नहीं है, बस मन जल रहा है और वह मूक होकर जल जाना चाहती है !

बहुत देर बाद, खोयासा हरीश कहने लगा, 'एक बात मान सकोगी मृणाल।'

'कहो।'

'आज एक शपथ ले सकोगी।'

'कैसी शपथ हरीश बाबू ?'

'प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम कभी मुझसे कुछ नहीं छिपाओगी ! अन्दर-बाहर जो कुछ जैसा है, स्पष्ट रूप में मुझसे कह दिया करोगी ! मुझे अपना समझ कर जीवन में कभी भी

मुझसे विमुख नहीं होओगी ! मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ, कभी तुमसे दुराव नहीं रखूंगा। मन में जो कुछ है सदा तुम्हारे सामने खोलकर रखदूंगा।'

मृणाल ने मौन स्वीकृति दे दी !

तब मृणाल के हाथों से हरीश गुलाब के वह दो फूल लेता हुआ कहने लगा, 'इन्हें मैं लिये जाता हूँ मृणाल, तुम्हारे करों के स्पर्श से इनमें जीवन का संचार हो रहा है ! आज की शपथों की साक्षी बनकर यह सदा मेरे पास रहेंगे, कभी प्राणों से इन्हें अलग नहीं होने दूँगा। इन्हें देख कर सदा आज की याद आती रहेगी !'

मृणाल हरीश की ओर देखती रही चुपचाप।

तब हरीश उठता हुआ बोला, 'अब जाता हूँ मृणाल ! यदि हो सके तो कभी कष्टों की अबेला में अपना समझकर मुझे याद कर लिया करना।'

मृणाल उसकी ओर देखती रही, मौन, स्तब्ध !

हरीश चला गया।

२२

भयंकर निराशा और किसी को भूलने का प्रयत्न मनुष्य को प्रतिशोध की ज्वाला में झोक देता है। वह स्वयं से प्रतिशोध लेना चाहता है, स्वयं को जला डालना चाहता है।

आज कई दिनों पश्चात नीरेन नीलिमा के यहाँ जा पहुँचा। नीलिमा बैठी थी, मौन, निस्तब्ध। नीरेन को देखते ही उठ खड़ी हुई, 'आईये नीरेन बाबू, कहाँ चले गये थे आप। कितना

आपको ढूंढ़ती रही, कई बार आप के घर हो आई, आपकी राह देखती रही, परन्तु आप आये ही नहीं। सोचती रही ऐसा तो कभी नहीं हुआ। इतने अचानक आप कहाँ चले गये थे।'

नीरेन कहने लगा, 'उस मणि को तो जानती हो नीलिमा वह नन्हीं-सी लड़की मणि! एक दिन उसी की माँ अचानक बीमार पड़ गईं! तेज ज्वर चढ़ आया, मुँह से रक्त बहने लगा। भागी घबराकर मेरे पास दौड़ आई! पाँव पकड़ कर कहने लगी, 'बचा लो, मेरी माँ को बचालो भैया। वह मर रही है। मुझे छोड़कर सदा के लिये भागी जा रही है। उनके बिना मैं नहीं रह सकती, मैं उन्हें बहुत प्यार करती हूँ। मैं अनाथ हो जाऊँगी, बस एक बार उन्हें बचालो भैया। 'परन्तु मैं तो कुछ भी न कर सका नीलिमा। मेरी आँखों के सामने ही मणि को बिलखता छोड़कर वह सदा के लिये सिधार गई।' कहते कहते नीरेन उदास हो गया।

बड़ी व्यथा लगी नीलिमा को। वह पूँछने लगी, 'उसके तो और कोई भी नहीं है, अब क्या होगा उस मणि का।'

'एक उसका भाई है दूर के सम्बन्ध का। उसके कोई बच्चा नहीं है। वही आज आकर कहने लगा, 'मेरे कभी कोई नहीं हुआ बाबू, पत्नी थी वह भी सिधार गई। मणि को मैं पालूँगा इसे मुझे दे दीजिये। उसी के साथ मणि चली गई।'

'बेचारी लड़की।' नीलिमा के नारी हृदय से एक धीमी उसांस निकल गई।

नीरेन कहने लगा, 'आज सोच रहा हूँ नीलिमा कि मनुष्य क्यों मरता है और यदि मरण ही अन्त है तो जीवन का यह अभिनय जबरन उसके सर पर क्यों मढ़ दिया जाता है।'

'इस मृत्यु के काले आंचल में बांधकर ही तो वह सृष्टि-

कर्ता अपनी महत्ता दिखाना चाहता है, अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराना चाहता है। नहीं तो मनुष्य मनुष्य नहीं होता, वह होता ईश्वर। शायद उससे भी ऊँचा।'

'हाँ शायद यही कारण हो,' नीरेन चुप हो गया।

बहुत देर बाद नीलिमा बोली, 'मृणाल को देखा है आपने।'

'क्या हुआ मृणाल को नीलिमा।' नीरेन पूँछने लगा।

जाने क्या हो गया है उसे नीरेन बाबू। इन तीन महीनों में जाने कैसा परिवर्तन उसमें आ समाया है। देखती हूँ तो लगता है जैसे वह पागल हो जायगी। खाने-पीने की सुधि त्याग दी है। विश्राम छोड़ दिया है। अब एक मूर्ति बना ली है, दिन रात उसी के सम्मुख बैठी, उसकी आराधना किया करती है। नित्य सूर्य की प्रथम किरण के आलोकित होने से पहले ही उद्यान से पुष्प तोड़ लाती है, उन्हें मूर्ति के चरणों पर चढ़ाती है, दीप जला देती है और उसी के सम्मुख बैठी जाने क्या गुन-गुनाया करती है। एक दिन मैंने पूँछा तो कहने लगी, 'मैंने कभी भगवान पर श्रद्धा नहीं रक्खी, कभी उसकी पूजा-आराधना नहीं की। परन्तु आज मुझे अपनी भूल ज्ञात हो गई। जीवन की इस अन्तिम बेला में तो उस भूल को सुधार लेने दो जीजी! भगवान पूजा से प्रसन्न होते हैं, इसी से उनकी आराधना करती हूँ, यही तो मानव-धर्म है जीजी।'

मैंने रोका तो अधीर होकर कहने लगी, 'ऐसा करने से न रोको जीजी, बड़ा पाप लगेगा तुम्हें।'

'जाने क्या हुआ है उसे, आप ही जाकर पूँछिये न ज़रा।'

नीरेन ने आकर धीरे से द्वार खोल दिये। धूप-नैवेद्य की सुगन्धि से एक बार उसका मन आह्लादित हो उठा। एक बार अनन्त शान्ति से उसका हृदय तृप्त हो उठा। फिर करुणा से भर कर वह मृणाल को देखता ही रह गया। मूर्ति

के चरणों पर माथा धरे पड़ी है मृणाल। शरीर निर्बल पड़ गया है। नयना शून्य में उलझकर जाने क्या खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं। अलकें धूल-धूसरित होकर उलझ गई हैं। और मृणाल पड़ी है बेसुध होकर!

नीरेन देखता रहा। हृदय वेदना से भर आया। तभी मृणाल के नयनों से दो बिन्दु अश्रु निकलकर मूर्ति के चरणों पर टपक पड़े -टप-टप!

नीरेन आहत होकर पुकार उठा, 'मृणाल।'

सुना नहीं मृणाल ने।

'मृणाल' नीरेन ने फिर पुकारा। मृणाल चौंक कर उठ खड़ी हुई। आंचल कन्धे पर डालकर दोनों हाथ जोड़ दिये!

'यह सब क्या है मृणाल?'

मृणाल सहसा हँसने लगीं, 'कहाँ, कुछ भी तो नहीं।'

'मूर्ति, आराधना, यह सब क्या है मृणाल?'

'जीवन की सबसे मधुर वेला में भी उस परम-पिता को बिसरा देने की विधि तो नहीं है नीरेन बाबू। आप क्या ईश्वर पर विश्वास नहीं रखते।'

'मैं तर्क करने नहीं आया हूँ परन्तु अपनी मन और देह को गलाकर किसी महत्ता का गान करने की भी तो विधि नहीं है मृणाल।'

'मन-देह को गलाना कैसा, इससे तो बड़ी शान्ति मिलती है, बड़ा सुख मिलता है नीरेन बाबू! बड़ा आनन्द है साधना के इस मार्ग में।'

'स्वयं को छल कर, स्वयं को धोखा देकर, समस्त प्राणियों को तो छला नहीं जा सकता। एक बार अपनी आँखों को, अपनी देह को शीशे में देखो, स्वयं अपनी दशा पर तुम्हें आश्चर्य होने लगेगा।'

सहसा मृणाल आतुर हो उठी, 'नहीं नहीं, आप चले जाइये, मैं आपके पाँवों पड़ती हूँ, मुझे क्षमाकर दीजिये! मेरे इन सुखद स्वप्नों को छिन्न-भिन्न न कीजिये! आज मेरे जीवन का आधार बस यही तो रह गये हैं। इन्हें खोकर मैं जीवित नहीं रह सकूँगी! मैं मर जाऊँगी, एक दिन जरूर मर जाऊँगी नीरेन बाबू!,' कहते-कहते मृणाल पल भर में ही कमरे से बाहर हो गई।

नीरेन लौट आया। नीलिमा उसकी राह देख रही थी। बोली, 'देखा मृणाल को नीरेन बाबू।'

शून्य में देखते हुये नीरेन ने कह दिया 'हाँ।'

नीलिमा फिर कहने लगी, 'एक बात सोचती हूँ।'

'कहो।'

'संघर्षों से लड़ते-लड़ते आज मन थक गया है। क्यों न थोड़े दिन पहाड़ चलकर रहा जाय। कहते हैं खूब बर्फ पड़ रही है। बड़ा आनन्द रहेगा। मृणाल का भी मन बदल जायगा।'

नीरेन ने स्वीकृति दे दी, 'चाहो तो चल सकती हो, हरीश से भी कह देना होगा।'

× × ×

चौथे ही दिन सब लोग पहाड़ की ओर प्रस्थान कर चले! माँ को भी साथ ले चलने की बात उठी। परन्तु माँ न मानी। कहने लगी, 'मेरा बुढ़ापा है, तुम लोग कहाँ मुझे घसीटे-घसीटे फिरोगे।'

और फिर माँ नहीं जा सकी।

२३

शिमले के उन्मत्त प्रदेश में आये एक सप्ताह व्यतीत हो गया। प्रकृति के उस अनन्त और अथाह सौन्दर्य ने एक मोहिनी सी उन पर बिखेर दी। हिमाच्छन्न गगन-चुम्बी पर्वत मालाओं की बड़ी-बड़ी चोटियाँ स्वेत श्यामल मेघों का आँचल डाले दूर तक पंक्तियाँ बाँधे खड़ी हैं। दूर नीचे तक फैले हुये नन्हें-नन्हें मकान और देवदार के घने वृक्ष सूर्य की स्वर्ण किरणों में चमककर एक अनोखा सौन्दर्य उपस्थित करने लगे। सर्प की भाँति सिन्दूर तक फैले हुए मार्गों को तथा भाँति-भाँति के मनहर पुष्पों को निहार कर एक बार सभी मुग्ध होने लगे।

उस पर्वतीय भाग के एक ऊँचे से शिखर पर छोटा सा मकान था, उसी में आकर वह लोग रहने लगे। इस सजीव, प्रान्त में आकर लगने लगा, मानों छूट गया है विश्व का विषैला कोलाहल, बिछड़ गये हैं क्रन्दन और रह गई है केवल शान्ति, रह गया है केवल अतुल सुख।

दूर तक फैले हुये रूई से बर्फ में पर्वतों की काली-काली कुरूप चोटियाँ ढक जातीं, मकान समा जाते। देवदार के घने वृक्ष और नन्हें-नन्हें कोमल पुष्प उसाँसे भरने लगते। कभी वर्षा की फौवारें कठोर चट्टानों पर खड़ी हो होकर

नर्तन करने लगतीं, जिनकी छम-छम से नूपुर-ध्वनि की सी एक संगीत-मय रचना होती, जिसको मकान की खिड़की में बैठी नीलिमा सुनती रहती।

आज कई दिन बर्फ पड़ने के पश्चात् सहसा बादल फट गये। आलोकमय सूर्य आलोकित होकर चमकने लगा। नीलिमा आज नीरेन की बाँह पकड़े एक ऊँची चट्टान पर खड़ी दूर तक फैले उस श्वेत बर्फ को मुग्ध होकर देखने का प्रयास करने लगी।

ढक गई हैं विशाल चट्टानें, ढक गये हैं उनके बीच में रेंगते हुये लम्बे-लम्बे मार्ग, ढक गये हैं घने देवदार के वृक्ष और ढक गये हैं नन्हें-नन्हें मकान, बस रह गई है केवल श्वेत बर्फ, मानों सदियों से यह पड़ी है, युगों तक अटल होकर पड़ी रह जाना चाहती है। सूर्य की प्रखर किरणों चिर-सुहागिन की नाईं उस श्वेत शय्या पर अठखेलियाँ करने लगीं। नीलिमा मुग्ध होकर उन्हें देखती रह गई।

नीरेन का हाथ पकड़े पकड़े आज वह बहुत दूर तक निकल आई। प्रकृति का समस्त सौन्दर्य जैसे आज वह अपने मन में बटोर लेना चाहती है। मतवाली सी नीलिमा कहने लगी, 'देखिये नीरेन बाबू, वह मकान है हमारा, वह दूर उस पहाड़ी पर! वह चट्टान है उसके नीचे, जो बर्फ में बिलकुल समा गई है, वह वृक्ष है देवदार का, सूर्य के आलोक में कैसा सुन्दर लग रहा है। और उधर देखिये, उन पर्वत-मालाओं से कुछ उभर कर वह स्नेह सी रेखा! कहते हैं वह एक सरिता है, जिसके पास तक कभी कोई नहीं पहुँच पाया। जो आदि काल से बहती आई है और सृष्टि के अन्त तक बहती रहेगी!'

नीरेन उसी ओर देखने लगा!

तनिक देर बाद नीलिमा फिर कहने लगी, 'बड़ा मोह होता

है उस अदृष्य संसार को देख लेने का। ऐसा कौन सा रहस्य है इन गगन-चुम्बी पर्वत-मालाओं के पीछे, जिसे इतनी अट-लता में छिपाये खड़ी हैं, जिसे नश्वर संसार की मलिन छाया से वह दूर रख लेना चाहता हैं।' बालिका सी नीलिमा पूँछने लगी, 'आप जानते हैं नीरेन बाबू।'

नीरेन उसके भोलेपन पर मन ही मन मुस्करा पड़ा। मज-दूरों के बीच कार्य करती हुई नीलिमा की गम्भीरता से आज की इस नीलिमा की चंचलता की वह तुलना करने लगा! कैसे यह दो रुप हैं नारी के, लाख प्रयत्न करने पर वह न समझ सका। कहने लगा, 'नहीं जानता नीलिमा कौन सा रहस्य छिपा है उनके पीछे, परन्तु इतना जानता हूँ, वहाँ जग का कठोर कोलाहल नहीं है, चीत्कार नहीं है, निष्ठुर क्रंदन नहीं है। वहाँ मनुष्य-मनुष्य को देखते ही छल-कपट की बात नहीं साचने लगता। वहाँ रहते हैं भोले-भाले देहाती। वहाँ शान्ति है, सुख है और उन सब के ऊपर है एक चिर-अमर संगीत जो सदा उनके प्राणों की सिहरन को एक ताल में मिलाकर बहाया करता हैं। 'केवल यही विश्व-विश्व है मृणाल, उनका जीवन ही जीवन है।' कहकर नीरेन शून्य गम्भीर नेत्रों से उस ओर देखने लगा।

आज नीलिमा को नीरेन का यह भाव बड़ा विचित्र लगा। पूँछने लगी, 'क्या कभी आपको इस शान्ति से, ऐसे प्रदेश से मोह नहीं होता नीरेन बाबू। क्या आपके मन में कभी इच्छा नहीं उठती कि ऐसे ही किसी शान्ति-पूर्ण स्थान में जाकर जीवन सुख से व्यतीत करदें।'

'नहीं, नहीं होती।' शून्य में निहारते हुये नीरेन ने कह दिया।

'नहीं होती?' नीलिमा को आश्चर्य लगा।

'संसार को हेय समझकर उससे बहुत दूर इन पहाड़ियों में मेरा मोह नहीं बिखर सकता नीलिमा। संसार में संसार का ही एक व्यक्ति होकर मैं रहना चाहता हूँ। उसी संसार में रहकर उसके दीन-हीन लोगों को उठाना चाहता हूँ, उनके चीत्कार दबा देना चाहता हूँ, उनके आंसू सदा के लिये पोछ देना चाहता हूँ। अपने उस संसार को भी इन मनहर पहाड़ियों के समतल तक लाना चाहता हूँ। शान्ति मृत्यु की छाया है नीलिमा परन्तु उस शान्ति में जो सुख है कोलाहल का तीखापन उससे कभी होड़ नहीं ले सकता।'

नीलिमा के हृदय से अनजाने में ही एक धीमी सी उसांस निकल गई। आज इस नारी की कोमल भावुकता पर नीरेन ने फिर से वास्तविकता का कठोर आवरण चढ़ा दिया। कुछ देर चुपचाप खड़ी वह बहुत नीचे पिघलते हुये बर्फ को देखती रही। फिर सहसा कहने लगी, 'मैं बहुत थक गई हूँ नीरेन बाबू, अब लौट चलिये।'

'चलो नीलिमा।'

राह में फिर कोई नहीं बोला। दोनों मौन निस्तब्ध भाव से लौट आये।

घर आकर नीलिमा कितनी ही देर बाहर एक ऊँची-सी चट्टान पर बैठी शून्य की ओर निहारती रही। फिर धीरे से उठकर अन्दर जाने लगी। सामने ही नीरेन के कमरे की खिड़की पड़ती थी। उसी से एक बार अन्दर झांक कर वह अवाक् मूढ़ सी खड़ी रह गई।

देखा, नीरेन अभी कमरे से बाहर गया है। उसी के पग-चिन्हों पर आकर मृणाल ने दीप जला दिया है और बार-बार माथा रखकर प्रणाम कर रही है। आँसू टपक रहे हैं टप-टप। और मृणाल पड़ी है, बेसुध सी मृणाल, खोई-सी मृणाल।

नीलिमा को बड़ी व्यथा लगी। आज एक युग से मृणाल भूले भटके पथिक की नाईं उद्देश्यहीन एक अनिश्चित मार्ग पर चल रही है। उसने अपनी समस्त सुध-बुध खो दी है। उसके बाल नीरेन के पग-चिह्नों पर बिखरे पड़े हैं और नयनों से निकली अश्रुओं की सजाली धारा उन्हें तर कर रही है। आज की बेला प्रलयकाल के महान परिवर्तन में से गुजर कर तुफानों को सर ले चुकी है और उस प्रलय-सागर में समस्त अतीत और भविष्य विलीन हो चुके हैं। परन्तु यह परिवर्तन क्या स्वयं मृणाल से भी अपरिचित है? बात साधारण सी प्रतीत होती है, परन्तु कौन जाने कि केवल इसी बात को लेकर उसकी कितनी ही रातें जागते और दिन गहन विचारों के जमघटों में व्यतीत हो गये। जीवन का यह अनोखा रहस्य प्रतारणा के आँसू बन गये।

कितनी ही देर नीलिमा खड़ी उस मृणाल को देखती रही। तभी मृणाल उठकर अपने कमरे में चला गई।

नीलिमा का असह्य हो उठा। सहसा मृणाल के पीछे जा खड़ी हुई। मृणाल खिड़की में खड़ी दूर पश्चिम में उगते हुये एकाकी तारे को देख रही थी, उदास नयनों से, चुपचाप।

नीलिमा पुकार उठी, 'मृणाल।'

मृणाल आँसू पोंछ कर मुस्कराने लगी, 'कहाँ चली गई थी जीजी, तुम्हें तो ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गई। उस वृक्ष के नीचे, चट्टानों में, दूर दूर झाँक कर देख आई, परन्तु तुम मिली ही नहीं।'

नीलिमा ने मानों सुना नहीं! पूँछने लगी, 'रोती हो मृणाल, नीरेन के लिये। उसके लिये जिसे तुम कभी नहीं पा सकोगी! उसके लिये जो चन्दा की भाँति सदा तुमसे दूर रह कर मुस्कराता रहेगा। उसी चन्दा के लिए आँसू बहाकर

और बाँहे पसार कर क्या तुम अपना लड़कपन नहीं दिखाओगी जीजी।'

मृणाल के अधरों पर वेदना की मुस्कान फैल गई, 'नहीं जीजी, मैं नीरेन के लिए रोऊँगी, क्या इतनी पगली हो गई हूँ मैं! उस दिन जाने कौन सी प्रेरणा से प्रेरित होकर कह डाला था कि मैं उन्हें प्यार करती हूँ। जाने कौन सी अदृश्य शक्ति ये शब्द मेरे अधरों तक खींच लाई थी, परन्तु वह सब सत्य तो नहीं था जीजी। आज उन शब्दों के आडम्बर को खूब समझ रही हूँ। आज लगता है मानों मैंने उन्हें कभी प्यार नहीं किया। कभी कर भी नहीं सकूँगी। जो कुछ था वह छल था, कपट था, सब झूठ था जीजी।'

'मुझसे छिपा रही हो मृणाल! मैं देख रही हूँ एक आग तुम्हारे हृदय में निरंतर जल रही है जो तुम्हारे अंग-प्रत्यंग को जला डालना चाहती है। जो तुम्हारी समस्त आकांक्षाओं को भस्मीभूत कर डालना चाहती है। तुम जल रही हो और मूक होकर जल जाना चाहती हो। बताओ जीजी क्या भाग्य-निर्माता ने तुम्हारे भाग्य में आँसू बहाना और चीत्कार करना ही लिखा है।'

'नहीं जीजी, जीवन में मैं कभी तुमसे झूँठ नहीं बोली! उस दिन मैंने अपने मन को छलने का प्रयत्न किया था। उस छलनामयी के चंगुल में मैं बुरी तरह जकड़ी गई थी। परन्तु तनिक सा चंगुल ढीला पड़ा कि मैं भाग निकली। अब कभी उस में नहीं फसूँगी। सच कहती हूँ जीजी अपने मन प्राण को सदा उससे दूर रक्खूँगी।' कहते कहते मृणाल कमरे से बाहर हो गई।

नीलिमा अवाक् रह गई। यह परिहास तो नहीं है! फिर अभी अभी जो वह खिड़की से देख आई है वह क्या है! एक-

पहेली सी उसे मृणाल लगी, मानों जो सुलझाये नहीं सुलझेगी।

नीलिमा सोचती रही, 'यह मृणाल है, स्वयं से कभी स्वीकार नहीं करेगी कि वह नीरेन को प्यार करती है। वह जल जायगी मौन होकर मर जायगी, परन्तु प्यार को कभी उभरने नहीं देगी। कभी उसे प्रगट नहीं होने देगी। हृदय में ही दबाकर सदा उसे रखना चाहेगी। कैसी यह नारी है, कैसी है मृणाल! जाने कितनी देर तक बैठी यही सब नीलिमा सोचती रही।

२४

आज बड़ी गर्मी है। देह जल रही है और जल रहे हैं मकान, जल रही हैं चट्टाने, जल रहा है बर्फ और जल रहा है यह बिजली का बल्ब, अंगारे दहक रहे हैं। असह हो रही है पीड़ा, असह हो रही है जलन। नीलिमा ने उठकर बिजली बुझा दी। दीप जलाकर खिड़की में रख दिया। फिर स्वयं भी जाकर वहीं खड़ी हो गई और पलकहीन नेत्रों से दूर तक फैले उस शान्त प्रदेश को देखती रही। असंख्य छोटे-छोटे मकानों में बिजली की बत्तियाँ झाँक-झाँक कर अपना अस्तित्व दिखाने का प्रयत्न कर रही थीं। मानों आकाश का प्रतिबिम्ब उतर आया हो, काला, काला, नीला, नीला, और यह असंख्य रिम-झिम करते बहुत चमक रहे हैं तारकों की भाँति। सदियों की शान्ति, सदियों का गर्व उस प्रदेश का नीलिमा को मुग्ध करने लगा। जाने कितनी देर नीलिमा बेसुध सी वहीं खड़ी रही।

तभी आ पहुँचा नीरेन। निलिमा को इस प्रकार खिड़की में खड़ा देख वह बहुत देर तक उसी ओर निहारता रहा। आरम्भ से ही न जाने कैसी गूढ़-सी नारी यह नीलिमा उसे लगी है। मानों एक पहेली हो, जो युग बीत जायँगे, ज्योति निस्तेज पड़ जायगी, परन्तु जो सुलझाये नहीं सुलझेगी !

कितनी ही देर बाद नीरेन पुकार उठा, 'नीलिमा।'

चौंक कर नीलिमा नीरेन की ओर देखने लगी, 'आइये नीरेन बाबू, आप यहाँ कब से खड़े हैं, मैं तो जान ही न पाई।'

नीरेन मुस्कराने लगा, 'इतनी रात तक दिया जलाये किसकी राह में आँखें बिछाये बैठी हो नीलिमा।'

'आप ही की राह तो देख रही थी नीरेन बाबू, इतनी रात तक कहाँ चले गये थे।'

'दूर की उन पहाड़ियों को देखती हो नीलिमा, आज उन्हीं के पीछे छिपा रहस्योद्‌घाटन करने का प्रयत्न कर रहा था। आज तुम साथ होती तो देखती कितना सुन्दर वह प्रदेश है। कितनी शान्ति है वहाँ, कैसे सरल लोग हैं वहाँ के। सचमुच नीलिमा उससे हटकर जीवन शायद विश्व में कहीं भी नहीं है।'

'खिड़की के बाहर के घने अँधियारे में देखती हुई नीलिमा कहने लगी, 'बैठ जाइये न नीरेन बाबू, खड़े कब तक रहिएगा।'

नीरेन बैठ गया। नीलिमा वहीं खड़ी रही।

'वहाँ इस प्रकार अँधेरा किये क्यों खड़ी हो नीलिमा यहाँ आकर बैठो।'

नीलिमा ने मानों सुना नहीं। उसी ओर देखती हुई कहने लगी, 'आज एक बात पूछना चाहती हूँ नीरेन बाबू, बहुत बार पूँछना चाहा, परन्तु कभी साहस ही नहीं हो सका। जब

भी कहना चाहा, किसी ने आकर शब्द अधरों पर ही रोक दिये। क्या सचमुच बता सकेंगे आप ?'

'मुझसे तो इतनी भूमिका बांधना तुम्हें शोभा नहीं देता नीलिमा।'

'हाँ, वही तो विश्वास है, उसी विश्वास पर तो आज साहस हो रहा है। एक दिन आपसे घृणा की थी, आपका अपमान-उपेक्षा भी कर बैठी थी परन्तु वही आज घृणा फिर श्रद्धा और विश्वास में बदल गई। और आज तो वह विश्वास मेरे जीवन का एक अंग बन गया नीरेन बाबू! इसीसे पूछने का साहस हो रहा है। आप इतने गम्भीर रहते हैं, इतने उदास रहते हैं, इसीसे पूछती हूँ, क्या जीवन में सदा ही आप अकेले रहे हैं? क्या कभी भी आपके हृदय तक कोई पहुँच नहीं पाया, क्या कभी भी किसी को अपना समझकर अपने जीवन में नेह नहीं किया ?'

नीरेन विक्षिप्त सा कहने लगा, 'बताऊँगा नीलिमा, तुमसे तो कुछ भी छिपाने का मन नहीं होता! यही सोचकर आश्चर्य होता है कि तुमने अनजाने में ही यह अधिकार कैसे प्राप्त कर लिया। असंख्य व्यक्तियों से घिरा रहने पर भी कभी-कभी लगता है मानों मैं तो बिलकुल अकेला हूँ। कोई संगी साथी नहीं है! बस एक बहुत धुँधली सी याद है जो आज भी हृदय पर उभर पड़ना चाहती है। वह एक लड़की थी नयना। उस अट्ठारह वर्ष की लड़की ने एक चौदह वर्ष के लड़के से प्यार किया था। उसके साथ वह भाग जाना चाहती थी, कैसा आदर्श था उसका। वासना उसमें नहीं थी, उसमें थी केवल एक साथी पाने की आकांक्षा। फिर एक दिन अचानक वह भी चली गई।' सहसा नीरेन चुप हो गया।

'उसके पश्चात् क्या कभी भी किसी को नहीं अपना सके नीरेन बाबू ?'

'नहीं।'

'कभी भी किसी को नहीं।'

'नहीं, मन पर तो अपना कुछ भी वश नहीं है नीलिमा, कितनी बार अनेक व्यक्ति सामने आ खड़े हुये। कितना चाहा कि उनपर मन की सारी ममता बखेर दूँ। कोई तो ऐसा हो, जिसे पकड़ कर अपने मन तक खींच लाऊँ। परन्तु सदा ही असमर्थ सा असफल होकर लौट आया। कभी भी किसी को अपना ही नहीं सका।'

नीलिमा के हृदय से अनजाने में एक उसाँस निकलकर उस निबिड़ अन्धकार में समा गई। बहुत देर वह उसी ओर आँखे गड़ाये खड़ी रही।

नीरेन कहने लगा, 'फिर मृत्यु शय्या पर पड़ी उस नयना ने मुझे बुलाया था। एक चाँदी की डिबिया मेरे हाथ पर रख कर कहने लगी लो यह मेरी माँग का उजड़ा सिंदूर, देखकर कभी-कभी मेरी याद हो आया करेगी। संसार में बस तुम्हीं तो मेरे अपने हो, इसी से यह तुम्हें सौंपे जाती हूँ!' तभी से यह डिबिया मेरे पास सुरक्षित रक्खी है। प्राणों से अधिक सदा मैंने इसे चाहा है। वेदना-व्यथा में, द्वन्द-संघर्ष में कभी भी इसे अपने से बिलग नहीं होने दिया है। परन्तु आज जाने क्यों मन में एक बात बार-बार उठ रही है नीलिमा।'

'कहिये।'

'आज अनजाने में ही इसका भार असह्य हो उठा है! भय लगने लगा है कि एक दिन जो प्रतिज्ञा की थी, कहीं उससे बिमुख न हो जाऊँ। इसी से आज यह तुम्हें सौंपता हूँ। इसे अपने पास रख लेना। मैंने सदा उसे प्राणों से अधिक चाहा

है। आशा है तुम भी इसका अपमान न कर सकोगी! बोलो सहन कर सकोगी मेरे इस भार को नीलिमा।'

तब जाने कैसे स्वर में नीलिमा बोल उठी, 'सह सकूँगी।'

तब घोर निस्तब्धता छा गई। बहुत देर बाद नीलिमा बोली, 'एक बात और कहना चाहती हूँ नीरेन बाबू।'

'कहो।'

'मुझ पर अपना नेह कभी न बिखराना नीरेन बाबू, मुझे अपने हृदय तक उठा लाने का कभी प्रयत्न न करना! नहीं तो मैं भाग खड़ी हूँगी, फिर कभी हाथ न आऊँगी। एक दिन वह सुधीर बाबू अचानक मुझसे प्यार करने लगे थे इसीसे वह जीवन में सदा के लिये मुझसे दूर हो गये। परन्तु आपकी दूरी मैं कभी सहन नहीं कर सकूँगी। इसीसे कहती हूँ कि आप कभी भी मेरे समीप आने का प्रयत्न न कीजिये। नहीं तो व्यथा मेरे जीवन में सदा के लिए जमकर बैठ जायगी।' एकबारगी नीलिमा उन अतीत की घटनाओं में खो गई।

खोया-सा नीरेन कह उठा, 'ऐसा ही होगा नीलिमा।'

२५

संध्या बेला प्रकृति का एक सुन्दर रूप है। असीम शांति और अतुल सुख, दोनों इसी में निवास करते हैं। शीतल पवन मन्द सुगन्धित झकोरे यदि बन्द पुष्पों की पंखुरियाँ खिला देते हैं तो मानव-हृदय को भी शान्ति और सुख प्रदान करते हैं। उसके हृदय में वह एक रोमान्चकारी सिहरन उठा

देते हैं। तब मानव एक नवीन विश्व में प्रवेश करता है जहाँ न शोक है, न दुख, न कलह।

बहुत देर तक मृणाल एक बड़े से पत्थर पर बैठी प्रकृति के इस विशाल-शान्तिमय रूप को निहारती रही। फिर जब नीलाकाश में काले-काले बादल उमड़ आये और उमस बहुत बढ़ गई तो कितनी ही देर मृणाल उन काले-काले मेघों का घोर गर्जन सुनती रही और जब बिजली जोर से चमक उठती और चहुँ ओर उजियाला छा जाता तब सामने के देवदार के वृक्ष से विरह-बिछुरा सा कोई पक्षी जोर से चिल्ला उठता। मृणाल सोचने लगती, 'यह पक्षी हैं, संसार से दूर इनका अपना एक अलग बसेरा है, अपना व्यक्तित्व है, अपने नियम हैं। अन्डे से निकलकर बच्चा नरम-नरम घोंसलों की गोदी में पलता है। माँ अपने पंखों के आँचल में उसे छिपाये रहती है। वह बड़ा होने लगता है, फिर उसे सताती है सैक्स की भूख। वह एक साथी की खोज करने लगता है और उसे पाकर वह एक नीड़ का निर्माण करता है। तब मादा बन जाती है फल-दायनी और नर उसे प्रेम का उपहार दो चार बच्चे प्रदान कर सदा के लिये उड़ जाता है। फिर वह जीवन में कभी नहीं मिलते।

जीवन तो एक छल है, माया है, पग-पग पर मनुष्य छला जाता है। एक यह नीरेन हैं, हरीश हैं और हैं नीलिमा जीजी, यह भी तो एक कपट हैं। एक मोह हैं। वह जानती है, परन्तु फिर भी क्यों उनके बीच से दूर जाना नहीं चाहती, कैसा आकर्षण है यह, कैसी भावना है जो उसे सदा के लिये उन्हीं के साथ बांधकर रख लेना चाहती है।

मृणाल सोचती रही तभी हरीश उसके पीछे आ खड़ा हुआ। विचार-मग्न मृणाल जान ही न पाई। हरीश उसके

पास ही पत्थर पर बैठ गया। बहुत देर बाद वह धीरे से कह उठा, 'क्या सोच रही हो मृणाल ?'

मृणाल चौंक उठी, 'तुम कब आ गये हरीश, प्रकृति के उस सौन्दर्य ने आज ऐसा मोह लिया कि जान ही न पाई।'

'ऐसी कौन सी भाग्यशालिनी वस्तु है मृणाल, जिसमें इतना मग्न होकर तुम समा गई थीं।'

'नहीं कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं हरीश बाबू।' मृणाल के हृदय की वेदना साफ साफ झलककर उसके नयनों में बहने लगी। शून्य में नयना गड़ाकर मृणाल बैठ गई।

सहसा हरीश पूछने लगा, 'तुम इतनी उदास क्यों रहती हो मृणाल, देखकर बड़ी व्यथा लगती है, बड़ा दर्द लगता है। तुम्हारी तनिक सी भी मुस्कान देखकर मन प्रसंन्नता से नाँच उठता है। अपने लिये नहीं, विश्व के लिये नहीं, तो मेरे लिये ही मृणाल तुम इतनी उदास न रहा करो। बोलो, क्या स्वीकार कर सकोगी इस-दीन की यह तुच्छ प्रार्थना।'

खोई सी मृणाल ने स्वीकार कर लिया, 'प्रयत्न करूँगी हरीश बाबू शायद सफल हो सकूँ।'

तनिक देर पश्चात हरीश कहने लगा, 'आज तुम्हें एक उपहार देना चाहता हूँ मृणाल।'

मृणाल मौन प्रश्न-सूचक नयनों से हरीश की ओर देखने लगी।

हरीश ने एक सुन्दर सी अंगूठी निकालकर मृणाल के हाथ पर रख दी!

मृणाल एक बार चौंककर निस्तब्ध रह गई। आतुर होकर कहने लगी, 'नहीं-नहीं हरीश, यह सब रहने दो। इतनी ममता इतने आदर के योग्य मैं नहीं हूँ। इता बड़ा भार इन निर्बल कन्धों पर मैं कैसे ले सकूँगी। आज मेरा मन शून्य है, उसे

शून्य ही रहने दो, आज उसमें अपने हाथों से जीवन का अंकुर मत फलने दो, नहीं तो मैं मर जाऊँगी, सदा के लिये लुट जाऊँगी हरीश।' दो बिन्दु अश्रु मृणाल के नयनों से निकल कर उस काली-काली चट्टान पर बिखर पड़े।

हरीश कहने लगा, 'उस दिन अनजाने में ही जो एक दूसरे के समीप रहने की शपथ ले ली थी मृणाल आज उसी के विश्वास पर इतना साहस कर रहा हूँ। मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं चाहा, आज एक भीख माँगता हूँ, यह तुच्छ सी भेंट अस्वीकार न करना नहीं तो मेरा विश्वास छूट जायगा। मैं बहुत दीन हूँ मृणाल, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।' कहते-कहते सहसा हरीश ने मृणाल के पाँव छू लिये।

मृणाल अवाक् उसकी ओर देखती रह गई। उसके हृदय का सारा ममत्व आज हरीश पर बिखर पड़ा। कोमल होकर कहने लगी, 'ऐसा न कहो हरीश। तुम जो कहोगे आज उसे हृदय से स्वीकार करूँगी। आज तुम्हारे सामने ही इसे अपनी अंगुली में पहनता हूँ, प्रतिज्ञा करती हूँ जीवन में कभी भी इसे अपने से अलग न होने दूँगी।'

मृणाल ने अँगूठी पहन ली। हरीश मौन होकर उसे देखता रहा, देखता रहा। उसे मृणाल का प्यार चाहिये। प्रेयसी के रूप में नहीं तो माता के रूप में ही सही, भगिनी के रूप में ही सही और वह उसने पा लिया है, आज बहुत प्रसन्न है हरीश, बहुत सुखी है।

दूर पहाड़ियों की तलहटी में कोई मधुर स्वरों में बंशी बजा रहा था। उसका धीमा-धीमा स्वर कोकिल के विरह गान की नाईं चट्टानों के बीच समाकर ऊँचा उभरने लगा! परन्तु पिघलतीं नहीं वह कठोर चट्टानें, आँसू बिखरे नहीं उनके। हरीश जाने कितनी देर मौन उसे सुनता रहा। उसके नयनों में

अनजाने में ही दो कण अश्रु सिमट आये और एक धीमी सी उसांस उसके अधरों पर आकर बिखर गई ।

बहुत देर बाद मृणाल कहने लगी, 'ठन्ड बढ़ रही है हरीश बाबू, अब अन्दर चलना चाहिये ।'

तब मौन हरीश चुपचाप उठ खड़ा हुआ ।

२६

कहते हैं फिर से अकाल पड़ेगा । प्रांतों के आँचल से एक बार फिर चीत्कार उठेगा । इस बार जला डालेगा विश्व को, नष्ट कर डालेगा और यह साम्प्रदायिक दंगे । महामारी फैली है । आँधी चल रही है, तूफान उठ रहे हैं, रक्त बह रहा है और बह रही है बेदना, बह रहे हैं आँसू । ज्वाल जल रही है, अभिषाप के प्रतिषोध की । सारे देश को बाँह ग्रस्त कर लेना चाहती है । मानव जल रहा है, जलकर मर रहा है, मरता जायगा, नष्ट होता जायगा, ज्वाल जलती रहेगी, जलती रहेगी ।

नीरेन सोचता है तो उसका मन दयाद्र हो उठता है । कितना विचित्र है वह । एक बार वह स्वयं अपनी आँखों से देखेगा, कितना करुण है यह कितना सजल है । मनुष्य का पतन, उसका स्वार्थ कितना गिरेगा । जीवन की वह मुडेरी जिस पर खड़ा होकर वह दूर तक देखने का प्रयत्न कर रहा है कब तक स्थिर रह सकेगी । असह हो रहा है, असह हो रहा है यह सब ।

एक दिन अनायस ही उसके हृदय का बाँध टूट गया। वेदना बहने लगी। आतुर होकर वह नीलिमा से कहने लगा, 'मैं जा रहा हूँ नीलिमा। आज तुम लोगों के बीच से निकलकर मैं दूर जा रहा हूँ। देखती हो यह साम्प्रदायिक दंगे, महामारी फैली है, तूफान उठ रहा है। मानवता, उसका अंग प्रत्यंग नष्ट हुआ जा रहा है। एक बार मैं अपनी आँखों से देखूँगा, मनुष्य क्यों लड़ता है और क्यों मनुष्य का रक्त बहाकर शान्त हो जाता है। मैं स्वयं देखूँगा कि कहीं इसका अन्त भी है या नहीं।'

नीलिमा को मानों विश्वास नहीं हुआ। वह मूक उसकी ओर देखती रह गई। नीरेन फिर कहने लगा, 'जानता हूँ नीलिमा, मेरा अस्तित्व ही क्या है, सागर में एक बिन्दु की भांति, परन्तु फिर भी मैं जाऊँगा, अवश्य जाऊँगा नीलिमा।'

नीलिमा में मानों दुनिया भर की व्यथा समा गई। उदास होकर कहने लगी, 'आप जाना चाहेंगे तो जायगें ही नीरेन बाबू। आपको रोक रखने का अधिकार तो मुझे है नहीं। सदा से ही तो आप मेरी उपेक्षा करते रहे हैं, फिर आज रुक जाओ कहकर उस उपेक्षा का भार और नहीं बढ़ाऊँगी।'

'यदि जीवित रहा तो एक बार तुमसे अवश्य मिलूँगा नीलिमा, बहुत सी बातें मन में समाई हैं, कितनी ही बार तुमसे सब कुछ स्पष्ट होकर कह देना चाहा, परन्तु कभी साहस ही नहीं हुआ, फिर सोचा कि जाने दो, जो अज्ञात है, उसे विश्व के सम्मुख प्रगट करने से लाभ भी क्या! परन्तु आज विश्वास से कह रहा हूँ नीलिमा कि उस दिन सब कुछ तुम्हारे सामने खोलकर रख दूँगा, उस दिन तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगा।'

तभी हरीश कहने लगा, 'एक बार माँ से भी मिल सकोगे भैया।'

'नहीं, नहीं मिल सकूँगा हरि। उनसे कहना कि कभी मुझे अपने चरणों से अलग न होने दें। आशीर्वाद दें कि अपने कर्त्तव्य में सदा सफल हो सकूँ। जानते हो हरि, माँ का आशीर्वाद कभी अकारथ नहीं जायगा। वरदान की भांति वह सदा मेरी छाया के साथ लगा रहेगा।'

और मृणाल खड़ी सुनती रही चुपचाप।

नीलिमा कहने लगी, 'प्रगति आपका लक्ष्य है, मैं उसमें बाधा दूंगी। परन्तु कष्टों की अबेला में आप अकेले कैसे रह सकेंगे? इसीसे कहती हूँ क्या मैं भी आपके साथ नहीं चल सकती, इन दुर्बल बाहों से मैं आपकी कुछ सहायता अवश्य कर सकूँगी, ऐसा मेरा विश्वास है।'

'नहीं नीलिमा, आज इन दीन हीन मजदूरों को तुम्हारी बड़ी आवश्यकता है। आज तुम्हें उन्हीं के बीच छोड़े जाता हूँ। आशा है, हरि और मृणाल को संग लेकर तुम उन्हें सम्हाल सकोगी। उन्हें उनके अधिकार दिला सकोगी। उनमें स्वाभिमान जगाकर उन्हें मनुष्य की भांति रहना सिखा सकोगी। मुझे तुम्हारी शक्ति पर विश्वास है। बोलो, कर सकोगी न इतना।'

तब एक धीमी सी उसाँस लेकर नीलिमा ने स्वीकार कर लिया, 'कर सकूँगी नीरेन बाबू।'

उसी दिन नीरेन चला गया।

२७

ट्रेन दौड़ रही है और दौड़ रही हैं चट्टानें, दौड़ रहे हैं वृक्ष, दौड़ रहा है बर्फ और दौड़े जा रहे हैं झरने, शान्ति से अठखेलियाँ करते। दौड़ रही है लम्बी-लम्बी रेल की पटरियाँ, दूर तक माया जाल सी फैली। आतुर सी बाँहें फैलाये पड़ी है उस पर बर्फ, विरहिन सी चिल्ला रही है, 'मत जाओ मुझे अकेली छोड़कर।'

हो रहा है पक्षियों का कलरव, मधुर शोर, और उसी के पीछे खड़ी है असीम शान्ति, अतुल सुख। रूढ़ियों का गर्व लिये, सीना तानकर रूढ़ियों का अभिमान समेटे। दावा कर रही है मानवता का और हँस रही है अपने से दूर बसे हुये उन प्रान्तों पर। प्रण कर रही है, सहानुभूति दिखा रही है उस पाशविकता पर और सबूत दे रही है, अपनी ऊँचाई का, अपनी महत्ता का। सजल होकर आँसू बहा रही है उनके विवेक पर, उनकी बुद्धि पर, उनके स्वार्थों पर और मूक होकर सुन रही है उनका क्रन्दन, उनके चीत्कार और अनुमत कर रही है उनके आतुर आँसू। अटल होकर कह रही है, यह चट्टानों का बना हृदय है, यहाँ कभी दरार नहीं पड़ सकती, कभी जीवन नहीं टूट सकता।।

और दूर से उठ रही है चीत्कार, बह रहा है रक्त, बह रही है पीड़ा, मानव समाया जा रहा है, मग्न हुआ जा रहा है, पशु बनकर, सुध-बुध भूलकर! आग लगी है जिसने सदियों की घृणा को तपाकर कंचन सा कर दिया है। कंचन चमक रहा है, कौंध रहा है। पिघल रहा है, पिघलकर नये ढाँचे में ढाला जा रहा है और ढाला जाता रहेगा, प्रत्येक पल में, प्रत्येक परिस्थिति में, सदियों तक, युगों तक सृष्टि के अन्त तक! मनुष्य लड़ रहा है, ईश्वर के नाम पर, ईश्वर को साक्षी मानकर, धर्म को साक्षी मानकर और स्वयं ही नष्ट कर रहा है ईश्वर को, धर्म को। तोड़े जा रहे हैं मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे! जलाये जा रहे हैं मनुष्य-पशु। बलि दी जा रही है उसी परम पिता के चरणों पर, उसी की सन्तानों की, उसी के बन्दों की। आज रो रहा है ईश्वर, रक्त से पांव भर गये हैं, चीत्कार कर रहा है परम पिता, परन्तु मनुष्य देखता नहीं है, उसने आँखे बन्द कर ली हैं, कान बन्द कर लिये हैं। पागल हो गया है मानव, दीवाना हो गया है, उसे प्यास लगी है, वह रक्त पी रहा है। खप्पर भर गये हैं। चिनगारियाँ निकल रहीं हैं, जो उसे जला डालना चाहती है—ईश्वर की सत्ता को, भस्म कर डालना चाहती है उसके नियमों को, तोड़ देना चाहती है ब्रह्मांड, निगल जाना चाहती है ईश्वर को। उसी के नाम पर, उसी की दुहाई देकर। बुद्धि है मनुष्य की, ईश्वर से भी अधिक वेगशाली बन गई है। मानव के हाथों में खिलौना बन गया है सृष्टि-कर्त्ता! वह सुन रहा है, समझ रहा है, परन्तु मौन है। धन्य है उसके धैर्य को, उसके अटल विश्वास को।

और धर्म की ग्रन्थियों के पीछे छिपा है भोग, विलास, स्वार्थ। पुरुष नारी पर आक्रमण करता है, निर्बल, बेबस

नारी पर! उसे उठा ले जाता है मनमाने अत्याचार करने के लिए, भोग की सामग्री बनाने के लिए, उसके शरीर पर टूट पड़ने के लिये और उसे नोंचकर खा जाने के लिए। फिर प्रसन्न होता है धर्म-रक्षा का शहीद कहलाकर, निर्बल नारी पर अत्याचार करके। मन को न सही शरीर को वह बदल देना चाहता है। अपने भोग में बृद्धि करने के लिये, अपनी दूषित वासना की तृप्ति के लिये फिर दुहाई देता है धर्म की, नारे बुलन्द करता है ईश्वर के।

नन्हें-नन्हें बच्चों को वह गर्व से आग में फेंक देता है मानों वह सृष्टि के कलंक हों, जिन्हें सदा के लिये छिप जाना चाहिये। चीत्कार उठती है और एक व्यथा की सिहरन दौड़ जाती है। दोष नहीं है, परन्तु मरना पड़ता है। लाचार है ईश्वर, शृंखलायें टूट पड़ी हैं, ग्रन्थियाँ उलझ गई हैं, मनुष्य पशु बन गया है, पागल बन गया है।

साँझ घिर चली। बादल झूम-झूमकर लुढ़कने लगे। झंझा धीरे से सांय-सांयकर उठी, मानों वेदना भरे स्वांस वंशी में गूँज उठे हों।

नीरेन देखता गया। और चित्र आते गये, धुधले बनकर उजियाले बनकर।

वह बंगाल का अकाल, मानवता का कलंक, सृष्टि के अन्त तक जो मिट नहीं सकेगा। घाव बढ़ता जा रहा है। बढ़ता जा रहा है, एक दिन प्राण ले लेगा। वेदना असह हो उठी है, जीवन-लड़ियाँ टूट पड़ना चाहती हैं। साम्राज्यवाद का चक्र चलता रहा, हमारे देश के पूँजीवाद से मिलकर। षड्यंत्र चलता रहा, साम्राज्य की लिप्सा का, पूँजीवाद के वैभव का। सहस्त्रों नर-नारी मरते गये, क्षुधा से बच्चे गलते गये। परन्तु पूँजीवाद पिघला नहीं। नरम होकर गिर नहीं

पड़ा। उन्हीं के रक्त से अपनी जड़ें सींच सींच कर वह स्थिर हो गया, अटल हो गया। अट्टाहासों से चीत्कार दब गये, मुस्कानों से आँसू ढक गये। निर्बलता को दबाकर विलास की सामग्री बनने का प्रयत्न किया जाने लगा। नयनों में घनघोर घटाओं की सी सघनता लिए एक भोली सी लड़की आ खड़ी हुई। दो पैसे के लिए झोली फैलाये! निबल-जर्जर सी भोली लड़की। एक कार आकर रुकी। लड़की को खींच कर उसमें डाल दिया गया। अट्टाहासों से चीत्कार दब गये। मोटर की घरघराहट से क्रंदन रुक गये। मन जलता रहा तन जलता रहा, बेबस सी लड़की पड़ी रही। और उसके शरीर का प्राणों का मूल्य मिला एक रुपया। युगों से संचित उस निधि को बर्बरता से छीन लेने का केवल एक रुपया।

अत्याचार बढ़ते गये, आग जलती रही, होम पड़ता रहा। किसी की दुर्बलता पर धन से विजय पाने का प्रयास किया जाने लगा। पिपासित अधरों से नयनों के अश्रु पुँछने लगे। पेट की क्षुधा किसी के शरीर से सटकर शान्त होने लगी। एकबारगी सहस्रों नारियाँ वेश्या बन गईं। अन्ध कूप में समाने लगा मान-अपमान, युगों का गर्व, सदियों की महत्ता मौन होने लगे दरिद्र, मौन होने लगा जीवन और पूँजीवाद की निठुर अट्टाहास गूँजता गया, गूँजता गया, साम्राज्यवाद का सहारा पाकर किलकारियाँ भरने लगा, इठलाने लगा।

सन-सन करती हुई वायु बह गई। सहस्रों भूखे नर-नारियों की भीड़, सड़कों पर, बाजारों में, गलियों में। निर्बल जर्जर मानव, हड्डियों के ढाँचे से, नर कंकाल। हाथ पसारे भीख माँगते हुए, क्षुधा से प्राण देते हुए। और नन्हें-नन्हें बच्चे, सूखे स्तनों से लिपटे हुए आतुर नयनों से ललचाकर कुछ माँगते थे। सूखे मांस से प्राण उलझे नहीं, मृत्यु की

गोद में चले गये। माँ की गोदी से अधिक सुखमय बन गई मृत्यु की गोदी। जो माँ नहीं दे सकी दिया मृत्यु ने—सुख, शांति, चैन।

फुट-पाथ भर गये, अर्धमृत प्राणियों से। वह सहस्रों, प्राणी, लगोटी बाँधे हुए, ठन्ड से सिकुड़ते हुये, क्षुधा से जलते हुये मर गये, शान्ति से मर गये।

गाव खाली होने लगे, सड़कें सूनी हो गईं, अस्पताल भर गये, श्मशान भर गये। कब्रें टूटने लगीं। मुर्दे उखाड़े जाने लगे, खाये जाने लगे। मां ने बच्चे को फेंका नहीं, उसे साहस नहीं हुआ, चुपचाप नोंच-नोंचकर उसे खाने लगी। मन में आतंक भरे, नयनों में अश्रु भरे, हृदय में पीर भरे।

पिपासा शान्त नहीं हुई। रक्त से खप्पर भर गये। केश टूट कर बिखर गया, हृदय फट पड़ा। कपाल चटकने लगा, भस्म होने लगा। और उधर वह पूंजावाद सीना ताने खड़ा है, गर्व से इठलाता हुआ। मोटरों की घरघराहट, वैभव का अट्टाहास, नर्तन की नूपुर-ध्वनि, आत्मा का विलास। खड़ा है अपनी सत्ता जमाये, क्रंदन के मौन सुख को छिपाये हुये। और यह नदी, पुल, अट्टालिकायें, असेम्बली खड़ी है अभिमान से सर उठाये, मरने वालों का उपहास करती हुई, द्वेष की शान्ति की चिनगारियां बिखराती हुई। अपनी महत्ता का गान करती हुई। खड़ा है हाहाकार, उन्माद, पागलपन सर्वनाश का करुण चीत्कार और पीछे से निकल रही है चट्टानें, जो अटल हैं, जिनको गर्व है मानवता का, रक्त का बलिदान देकर पूँजीवाद को सींचने का। और बड़ी बड़ी मिलों से, विशाल कारखानों से घरघराहट के भयंकर शब्द में मिला हुआ कराहों का एक धीमा सा स्वर उठ रहा है। मैं भीख नहीं मांगता। मैं जीवित रहना चाहता हूँ क्योंकि वह

मेरा अधिकार है। सदियों से संचित शक्ति है। उसे मैं खो देना नहीं चाहता।

और आज देश जैसे देश नहीं है, नवीन-स्फूर्ति वही है, नव-जीवन नहीं है। वह भागती हुई हरियाली, झिलमिलाते हुये ताल आज आह भर रहे हैं, चीत्कार कर रहे हैं। मृत हो गया है देश, मौन हो गया है। प्यार जहाँ प्यार रहकर भी दुराव है, जाग्रति जहाँ जाग्रति होकर भी मौन है, अल-गात है, चीत्कार है।

गिर रहा है देश, जला जा रहा है भारत, जला जा रहा है, तपा जा रहा है। रोग हो गया है, पीड़ा उठती है, बीभत्स चीत्कार उठता है। मर जायगा देश, मर जायगा एक दिन गलकर।

सहसा ट्रेन रुक गई! नीरेन चुपचाप उतर कर एक ओर चल दिया।

२८

स्टेशन को छोड़कर नीरेन नगर को लांघता हुआ बहुत दूर निकल गया। विचारों की छाया में छिपकर उसका ध्येय आज उसके सम्मुख अज्ञात हो रह गया। अब संध्या का अंधियारा घिरने लगा। स्वच्छ चन्द्र-हीन आकाश से ओस-बिन्दु टपक-टपककर हरी दूब को गीला करने लगे। कोहरा मार्गों पर आँख मूँद कर विश्राम की स्वांस भरने लगा। दूर तक का वातावरण शब्द स्तब्ध होकर खड़ा रह गया।

कहीं दूर कोहरे के आवरण को चीर कर दो चार दियों का धीमा-धीमा प्रकाश आ रहा है। नीरेन उसी ओर चल दिया।

विचार धारा दौड़ती गई। यहाँ कितनी शान्ति है। कितना सन्तोष है। क्या यही वह शान्ति है जिसकी खोज में वह जन्म-जन्मान्तर से दौड़ता रहा है। क्या इसी शान्ति को लक्ष्य मानकर वह इतना चला है। नहीं, नहीं यह तो वह शान्ति हो ही नहीं सकती। यहाँ तो मृत्यु की छाया है। यह तो काल की सुख भरी गोद है। मृत्यु से दो क्षण पहले ही तो मनुष्य शान्त और सन्तोषी हो जाता है। हाँ, वैसी ही, बिल्कुल वैसी ही शान्ति है यह। यहाँ, सुख नहीं है, दुख नहीं है। चीत्कार, ममता, मोह भी नहीं है। यहाँ तो केवल एक नीरवता है, निस्तब्धता, जहाँ मनुष्य का दम घुटने लगता है, प्राण निकलने लगते हैं।

गीली घास पर मार्ग टटोलते हुये उसके पग तेजी से चलने लगे। दियों का प्रकाश बहुत पास खिंच आया। वह उसी ओर चल दिया।

'आप कौन हैं।'

किसी नारी का शब्द था, नीरेन चौंक कर खड़ा हो गया।

'मैं राही हूँ।'

'स्त्री पास आ कर खड़ी हुई।

'इस गाँव में आप नहीं रहते, यह तो निश्चय से कह सकती हूँ। परन्तु पास के नगर और गावों में भी तो आपको कभी नहीं देखा। आप कहाँ जा रहे हैं।'

नीरेन को इतने प्रश्न पूँछने वाली इस अनजान नारी पर आश्चर्य होने लगा, 'आपने गलत नहीं समझा है। मैं

बहुत दूर से आ रहा हूँ, परन्तु कहाँ जाऊँगा, यह मैं स्वयं भी नहीं जानता।'

'कहाँ जायगें, आप स्वयं भी नहीं जानते और इतनी रात को इस सुनसान में दौड़े चले जा रहे हैं। बड़े विचित्र हैं आप। शायद आपको ज्ञात नहीं है यहाँ किसान-मजदूर शराब पीकर रात-रात भर घूमा करते हैं। अनजान व्यक्तियों को जब तब लूट लिया करते हैं। हत्या तक कर डालने में वह नहीं सकुचाते। उनके अत्याचारों का आपको तनिक सा भी आभास मिल जाता तो आप कभी इस प्रकार नहीं घूम सकते, यह बात मैं विश्वास से कह सकती हूँ।'

नीरेन मुस्करा दिया, 'आपके गांव के दो तीन सशस्त्र किसान-मजदूर भी मेरा सरलता से कोई अनर्थ नहीं कर सकते, इतना बल आज भी इन हाथों से गया नहीं है।'

युवती कहने लगी, 'नहीं आप उन्हें नहीं जानते। कुछ ही दिन तो बीते हैं उन्होंने तीन व्यक्तियों को मार डाला। वह गिरोह बनाकर रहते हैं। कोई भी अकेला व्यक्ति उनके चंगुल से बचकर नहीं जा सकता।'

'उनके चंगुल में फँसने वाले अनेक व्यक्तियों में एक मैं भी हूँगा ऐसा तो आप दावा नहीं कर सकतीं।'

युवती आतुर हो उठी, 'मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ। न हो आज रात आप यहीं मेरी कुटिया में ही पड़ रहिये। नहीं तो आपकी हत्या के लिये भगवान कभी मुझे क्षमा नहीं करेंगें और गांव वालों पर जो मुसीबत आयेगी उसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकती।'

नारी के इस आतुर आग्रह के सम्मुख नीरेन निरूत्तर हो उठा। आश्चर्य से मूक होकर केवल कह सका, 'चलिये।'

नारी पथ-प्रदर्शन करती चलने लगी। पास ही उसकी

झोपड़ी थी। उसी में एक ओर एक छोटी सी खाट पड़ी थी। उसी ओर संकेत करके कहने लगी, 'बैठिये।'

मंत्र-मुग्ध सा नीरेन बैठ गया। मुस्कराकर पूछने लगा, आप भी तो यहाँ अकेली ही रहती हैं। आपको ये लोग कुछ नहीं कहते।'

'नहीं, ये मुझ पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं, बड़ा स्नेह रखते हैं। शराब पीकर भी यह कभी मेरा कोई अनर्थ नहीं कर सकते, यह बात मैं खूब जानता हूँ।'

'अच्छा आप जो अकेली रहती है, आपके अपना कहने को क्या कोई भी नहीं है।'

नारी के मुख से एक धीमी सी उसांस निकल गई, 'हाँ अब तो बिल्कुल ही अकेली छूट गइ हूँ, परन्तु सब दिन तो ऐसा नहीं था। पति सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। नगर में व्यापार करते थे। एक दिन समाज-सेवा की धुन समाई। इस गाँव में आकर रहने लगे। यहाँ उन्होंने गाँव वालों के सुधार के लिये क्या नहीं किया। पाठशालायें खोली। खेती के नये ढङ्ग सिखलाये। स्वयं अपने हाथ से गांवों की सफाई की और सब से ऊपर ग्राम-वासियों को दिखाया उन्होंने स्वाभिमान, अपने अधिकारों की मांग करना। परन्तु जानते हैं उसका परिणाम। एक दिन इन्हीं व्यक्तियों ने शराब पीकर उनकी हत्या कर डाली। मैंने जीवन में कभी उनका साथ नहीं दिया। सदा ही उनके कार्य की उपेक्षा करती आई। सदा ही व्यर्थ समझती आई। परन्तु आज सोचती हूँ कि वह कितने महान थे। जिन व्यक्तियों ने उनकी हत्या की उनके विरोध में उन्होंने शिकायत का एक भी शब्द नहीं कहा। मृत्यु शय्या पर वह कहने लगे, 'आज भी मेरा सेवा-व्रत अधूरा ही रह गया है। तुमने मेरे कार्यों में कभी सहयोग नहीं दिया। सदा ही

उसकी उपेक्षा करती रहीं। परन्तु आज एक प्रार्थना करता हूँ, एक दिन जो व्रत मैंने लिया था अब तुम उसे पूरा करना। इन लोगों को समझाना कि लूटमार और हत्या करना कितनी बुरी बात है। इन किसान मजदूरों के बीच से तुम कभी मत जाना, कभी मत जाना।' तभी से मैं इन लोगों के बीच काम कर रही हूँ, मैंने उनका संगठन किया है। मनुष्य को किस प्रकार जीना चाहिये, यही इन लोगों को सिखाने का मैं प्रयत्न कर रही हूँ। पता नहीं डाक्टर, किसी दिन उनकी वह इच्छा पूरी भी कर सकूँगा या नहीं।'

नीरेन आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा, 'आपने मुझे डाक्टर कहा है ?'.

नारी चौंक उठी, 'डाक्टर, आज अनजाने में ही उनकी याद आ गई। एक बार यहाँ प्लेग फैला था। ग्राम-वासियों का उपचार करने वह यहाँ आये थे। धीरे-धीरे उनके सनेही बढ़ने लगे। परन्तु जमींदार को यह फूटी आँखों न भाया। उसने विद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ्तार करा दिया। जमींदार की पूँजी के सम्मुख किसी की कुछ न चल सकी। आज भी वह जेल में पड़े सड़ रहे हैं। अच्छा, यदि आपको डाक्टर ही कहूँ तो आपत्ति तो न करेंगे ?'

'आप डाक्टर कह सकती हैं, आपको क्या कहूँ।'

'यहाँ लोग मुझे स्नेह कहकर पुकारा करते हैं, आप भी वही कहियेगा।'

स्नेह मौन हो रही।

नीरेन हँसने लगा।

'आप हँस रहे हैं।'

'हाँ, आज बड़ा आश्चर्य लग रहा है, अभी कुछ ही मिनट

तो हुये हैं आपसे परिचय हुये। परन्तु लग रहा है कि युगों से आपको जानता हूँ।'

'हाँ, बिलकुल यही बात तो आज मैं भी सोच रही हूँ। कितने ही व्यक्ति तो मेरी इस कुटिया में आकर ठहरे हैं। किसी से भी मैंने ये बातें नहीं कहीं। परन्तु आज जाने क्यों मन व्यथा से भर उठा है। अतीत आज अनजाने में ही नयनों में काँप उठा है। परन्तु जाने दो, उन सब बातों को अब नहीं दोहराऊँगी। आपने कुछ खाया नहीं है, पहले आपके लिये खाना बना लाऊँ।'

'आप इतनी रात को कष्ट सहकर मेरे लिये खाना बनायेंगी। अतिथि का इतना आदर तो मैंने कभी देखा नहीं।'

'देखा नहीं है, केवल यही कहकर आप तो अपने उत्तर-दायित्व से मुक्त हो गये, परन्तु आपको भूखा रखकर मैं जो नर्क के द्वार पर जा खड़ी हूँगी,, उसका क्या होगा।"

स्नेह के इस तर्क के सामने नीरेन चुप रह गया।

तनिक सी देर में स्नेह खाना बना कर ले आई। जमीन झाड़ पोंछ कर आसन बिछा दिया, कहने लगी बैठिये।

नीरेन आसन पर बैठ गया, कहने लगा "सच कहता हूँ स्नेह इतने प्यार और सम्मान के साथ तो कभी मेरी अपनी माँ ने भी मुझे नहीं खिलाया है। आपकी इस कृपा को जीवन में मैं सदा याद रक्खूँगा।'

स्नेह पास ही जमीन पर बैठ गई, ,'ऐसा क्यों कहते हैं आप। इस समय ठीक से कुछ बना भी तो नहीं पाइ हूँ। जैसा जो कुछ भी बना है आज उसी को खाकर सन्तोष कर लेना पड़ेगा।'

'इस समय जितने सुन्दर भोजन की मैंने आशा की थी, उससे यह कहीं अधिक स्वादिष्ट बना है, इसका सबूत अभी

आपको मिला जाता है।' कह कर नीरेन दोनों हाथों से जल्दी जल्दी खाने लगा।

तनिक देर बाद स्नेह ने पूछा, 'अच्छा कहाँ जायँगे, यह तो आपके सम्मुख अज्ञात ही है, परन्तु कहाँ से क्यों आ रहे हैं, क्या यह भी नहीं बतलाइयेगा।"

'मेरे हृदय में एक ज्वाला जल रही है, स्नेह। दीन-दारिद्रों पर पूँजी पतियों का अत्याचार आज असह हो उठा है। उनके चगुंल में आज वह बुरी तरह फँस गये हैं। ये और कितने दबे रहेंगे, उनका और कितना दमन होता है, यही देखना ही मेरी यात्रा का ध्येय है! इस समय मैं मजदूरों की शिक्षा में विश्वास नहीं करता, न ही उनका उपचार करना और खेती के नये ढंग सिखाना ही मेरा ध्येय है। मैं तो उन्हें केवल पूँजीवाद के चगुंल से छुड़ाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ पूँजी-बाद का भारी भरकम पांव एक बार इनके सीने से हट जाय। भारत की मिलों पर, ग्रामों पर एक बार मैं किसान-मजदूरी नियंत्रण चाहता हूँ उन्हीं का प्रबन्ध चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि तब सभी दशायें स्वयं सुधर जायँगी। तभी किसान-मजदूर वास्तव में सुखी हो सकेंगे। जरा सोचिये तो, भूखे रह कर आपके सुधार के कामों में ये लोग कैसे मन लगा सकेंगे।"

"नहीं, एक बार आप उनके परिवारिक जीवन को देखिये। एक बार देखिये, कैसे नारकीय संसार में वह रह रहे हैं। सच कहती हूँ, पल पल पर उनकी हत्या हो रही है। पल पल पर उनका दम घोटा जा रहा है। निर्दयता से उन्हें काल की गोद में ढकेला जा रहा हैं। जानते है आप उनकी मृत्यु देश की मृत्यु है।'

'लेकिन पूँजीपतियों के चगुंल से छूटे बिना तो कभी छुटकारा हो नहीं सकता स्नेह।'

'हो सकता है। उसका एक दूसरा पहलू भी है। केवल क्रान्ति ही शान्ति नहीं दे सकती। हमें उनके सामाजिक और पारिवारिक जीवन का अध्ययन करना है। हमें पहले उनकी नीव मजबूत करनी है। उन्हें शिक्षा देनी है। खेती सफाई आदि सिखानी है, तभी वह कुछ कर सकेगें। नहीं तो आपकी अचानक क्रान्ति से तो वह एक साथ ही सब गड़बड़ कर बैठेंगे।'

'जानता हूं, जो दीन-दरिद्रों की भलाई में अनाथाश्रम, चिकित्सालय तथा दरिद्र-भण्डार आदि खोलकर लोक-हित के अनेक कार्य कर रहे हैं महान व्यक्ति हैं वे, मैं उन पर श्रद्धा रखता हूँ। लेकिन मैंने उनकी सामाजिक या परिवारिक उन्नति का भार नहीं लिया है। मैं तो उन्हें केवल आर्थिक स्वतन्त्रता दिला देना चाहता हूँ। मेरा विचार है तब उनकी यह दीन अवस्था स्वयं सुधर जायगी। यदि उसके लिये क्रान्ति करके रक्त की दो चार बूंदे भी बहा देनी पड़ें तो भी मैं पीछे नहीं हटूँगा।'

स्नेह सन्न रह गई। भय से उसका हृदय काँप उठा। कहने लगी. 'यदि इन व्यक्तियों ने पूँजीवाद की सत्ता को उलटकर आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर भी ली तो क्या वह उसे स्थिर रख सकेंगे। ऐसा आपको पूर्ण विश्वास है। स्वाधीनता ही स्वाधीनता का अन्त नहीं होता डाक्टर। उसे बनाये रखने के लिये भी योग्यता की आवश्यकता होती है। फिर बताइये।तो ऐसे नारकीय जीवन में रहकर इतनी विद्वता, इतनी सांस्कृति वह पायेंगे कहाँ से।'

'मैं नहीं जानता स्नेह, जानना भी नहीं चाहता। मैं तो केवल एक बार उन्हें पूँजीवाद के चंगुल से छुड़ाना भर चाहता हूँ। बस मेरी एक मात्र आकांक्षा यही है।'

स्नेह कहने लगी, 'जो लोग असंख्य अत्याचारों से पीड़ित हो रहे हैं उन्हें उत्तेजित कर देना तो कठिन नहीं है, परन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि इन निरीह अज्ञानी किसान मजदूरों को यों ही बहुत दुख है, उस पर भी यदि आप मार-काट, रक्तपात शुरू करा देंगे तो उनके दुखों की सीमा ही न रहेगी। मैं कहती हूँ वह स्वाधीनता नहीं चाहते हैं, वह चाहते हैं शान्ति और सुख।'

नीरेन ने उत्तर नहीं दिया। हाथ धोकर वह उठ खड़ा हुआ।

स्नेह पूँछने लगी, 'मैं आपसे अपना मार्ग अपनाने को नहीं कहती, परन्तु क्या एक बार चलकर उनके पारिवारिक जीवन को देख भी नहीं सकियेगा।'

'अवश्य देखूँगा स्नेह, मुझे कल ही चला जाना था, परंतु अब नहीं जाऊँगा। कल संध्या तक आपके साथ अवश्य रहूँगा।'

तनिक देर बाद स्नेह कहने लगी, 'आप थक गये होंगे। यहाँ खाट पर सो रहिये, मैं बिस्तर बिछाये देती हूँ।'

नीरेन को आश्चर्य लगा, 'यहाँ दूसरी खाट तो दिखाई नहीं पड़ती, फिर आप कहाँ सोइयेगा।'

स्नेह मुस्कराने लगी, 'मेरी चिन्ता न कीजिये आप। मेरी कितनी रातें इसी कुटिया के द्वार पर जमीन पर लेटे खुशी से बीत गईं हैं। परन्तु अब आप देर न कीजिये। रात बहुत बीत गई है। मैं जा रही हूँ।'

बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही स्नेह कुटिया से बाहर हो गई।

२६

दूसरे दिन बड़े प्रात ही नीरेन और स्नेह ऊँचे नीचे संकीर्ण मार्गों को लाँघते हुये बस्ती की ओर चल दिये। राह में स्थान स्थान पर गढ़ों में पानी भर गया था, कीड़े पड़ जाने के कारण जिससे दुर्गन्ध उठ रही थी। जगह जगह कूड़े के ढेर लगे थे। लगता था जैसे जहाँ भी सुविधा मिली हो स्त्रियों ने कूड़ा फेंक दिया हो। छोटे छोटे धूल-धूसरित नंगे बच्चे एक दूसरे पर रेत उछाल रहे थे। तभी अकस्मात यह बात नीरेन के हृदय में घुमड़ उठी कि इस अभागे देश में इन प्राणों का कोई मूल्य ही नहीं, चाहे जिसके हाथ से किसी भी क्षण वह कुत्ते की मौत मर सकते हैं। संसार के विधान में इतना बड़ा अन्याय क्या कोई दूसरा हो सकता है। भगवान् जाने आज ये किसके किस पाप का दण्ड भोग रहे हैं।

तभी दोनों एक घर में घुसे। स्नेह ने पुकरा, 'पत्नी की आज कैसी तबियत है शेखर।'

पास वाली कोठरी से उत्तर आया, 'अभी तो कोई लाभ नहीं हुआ।' और एक वृद्ध आकर सामने खड़ा हो गया। उसके शरीर पर केवल एक लगोंटी थी। उसके मांस के पीछे से हड्डियाँ बड़ी शान से मुँह उठाये खड़ी थीं। वृद्ध सामने आकर कहने लगा, 'पत्नी तो वैसे ही है बेटी, उसे तो कुछ लाभ

हुआ नहीं, अब लड़की को भी कल से जोर का ज्वर चढ़ा है। सारी रात चीखती चिल्लाती रही है। कल से तो घर में चूल्हा भी नहीं जला। हाथ में एक पैसा भी नहीं था तो दवा या खाना वाना बनाकर खिलाता।'

नीरेन पूँछने लगा, 'तुम कहीं काम नहीं करते बाबा।'

बूढ़े ने एक बार उसकी ओर देखा। फिर धीरे से कहने लगा, 'करता था बेटा, खाली बैठकर पेट ही कैसे भर सकता है। यहीं पास ही एक कारखाना है। उसी में पत्थर फोड़ने का काम करता था। उस दिन जरा ज्वर था। हाथों में जैसे ताकत थी ही नहीं। बस हथौड़ा उंगली पर आकर गिरा। हड्डी चटख गई। उसी दिन से बेकार बैठा हूँ। बिना कुछ किये तो कोई पैसा दे नहीं देता बेटा।'

'तुम ने कारखाने के मैनेजर से कुछ नहीं कहा ?'

'कौन गरीबों के लिये कुछ करता है बेटा। मैनेजर कहने लगा, मिल तुम्हारे बाप की नहीं है जो खाली बैठे बैठे तेरा पेट भरते जायँ। कोई जानकर मरना चाहे तो मरेगा ही। यदि शरीर में बल नहीं था तो पत्थर फोड़ने ही क्यों आया था। दुनिया में और भी तो बहुतेरे काम थे।' मैं यहाँ नया तो नहीं था बेटा, पूरे छै वर्ष से पत्थर फोड़ता आ रहा हूँ।'

कोठरी में मैले गूदड़ों पर पत्नी और बच्ची पड़ी थी। स्नेह जाकर उन्हें देखने लगी। फिर बूढ़े से बोली, 'तुम डरो मत बाबा, मैं कल प्रातः ही डाक्टर, दवा आदि सब भेज दूँगी। खाने पीने का भी कुछ प्रबन्ध हो ही जायगा।'

अब नीरेन से नहीं रहा गया। वह जेब में हाथ डालकर रुपया निकालने लगा। तभी स्नेह ने उसे संकेत से रोक दिया। वृद्ध से कहने लगी, 'मैं जा रही हूं, शीघ्र ही तुम्हारा प्रबन्ध कर दिया जायगा।'

बाहर आकर नीरेन पूँछने लगा, 'मैं वृद्ध को रुपये दे रहा था आपने मुझे रोक क्यों दिया। जो दुखी हैं उनकी सहायता करना क्या आपके धर्म में नहीं लिखा है।'

स्नेह मुस्कराने लगी, 'आप उन्हें रुपये देकर बड़ा भारी अनर्थ कर डालते डाक्टर। वृद्ध तो अभी शराब पीकर बेहोश हो जाता और पत्नी और बच्चे खत्म हो जाते।'

नीरेन आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा, 'क्या कहती हो स्नेह, वृद्ध सचमुच शराब पीता है ?'

'हाथ में पैसे रहकर भी नहीं पियें, इस बस्ती में ऐसे लोग भी रहते हैं कितने डाक्टर। मगर ये भी तो अपने भाई-बहन ही हैं। हमारे ऊपर जो परम-पिता बैठे देख रहे हैं वह उन सब का पाई-पाई हिसाब लिये तो छोड़ेंगे नहीं। जब हम मनुष्य हैं तो हम पर दायित्व तो आ ही पड़ता है। आज मुझे स्पष्ट दीख रहा है कि उन सब अज्ञानी-दुखी-दुर्बल भाई-बहनों के सर इस असह पाप का बोझ कौन दिन-रात लादे जा रहा है।'

पास ही राजू की झोपड़ी है। ये लोग आगे बढ़े तो वहाँ से किसी स्त्री के रोने का स्वर स्पष्ट सुनाई देने लगा। उसी ओर संकेत करके स्नेह कहने लगी, 'यहाँ भी कारखाने का एक मजदूर रहता है। जिसका यह चीत्कार है वह उसी की स्त्री है। इसका रूदन इस बस्ती के लोगों के सम्मुख नया नहीं है। राजू अक्सर शराब पीकर उसे पीटा करता है।'

दोनों कुटिया के द्वार पर आ खड़े हुये।

स्त्री सामने ही जमीन पर औंधे मुँह पड़ी थी। उसके कपड़े फटे थे, शरीर से रक्त बह रहा था। कमर पर बेंत के लम्बे-लम्बे नीले निशान बने थे। स्नेह पूँछने लगी, 'क्या हुआ बहन।'

स्त्री स्नेह को देखकर और जोर-जोर से रोने लगी, 'मारना चाहता है तो और मारे, मैं थोड़े ही रोकती हूँ। मैं तो उसी की भलाई की कहती हूँ। सिर पर खून चढ़ा है। शराब पीकर आया है, कहता है हत्या करूँगा। मैंने कह दिया कि आगे का भी कुछ सोचा है तो लगा मुझे मारने, मैं तो सुना सुना कर कहती हूँ फांसी होगी, फाँसी। कारखाने में काम छोड़ दिया है। ले दे कर हाथों में शादी का कंगन बचा था। आज उसकी भी शराब पी गया। आज घर में तीन दिन से चूल्हा नहीं जला है। कह दिया तो तुनक गया। लगा मारने। 'स्त्री के आँसू तेजी से बहने लगे।

स्नेह ने देखा राजू अंधेरे कोने में बैठा है। पास ही शराब की बोतल रक्खी है। किसी चीज पर खंजर को घिस कर तेज कर रहा है। स्त्री ने क्या कहा, इसकी जैसे उसे खबर नहीं हुई।

स्नेह पूँछने लगी, 'यह क्या पागलपन है राजू हत्या करके क्या फाँसी पर चढ़ोगे।'

'फाँसी ही किस्मत में है तो कौन रोक सकता है। उस मैनेजर की बातें क्या सहने की चीज हैं। साला बेगार कराता है। कहता है हर महीने दो रुपये हजूर में पेश करो। क्या उसके बाप का खाते हैं। सारे दिन मजदूरी करते हैं तो कहीं जाकर पेट भरने को मिलता है। उसका क्या है बैठे बैठे हजारों रुपये कमाता है। मैंने जरा सा बेगार करने को मना किया तो चट से नौकरी से अलग कर दिया। कहता है काम का चोर है। कोई कुछ कहता नहीं तो सर पर चढ़ा जाता है। मैंने भी उसका खून न किया तो बाप का बेटा नहीं। बस एक बोतल चढ़ा लूँगा। कुछ पता नहीं चलेगा!'

'परन्तु फिर तुम्हारी पत्नी का क्या होगा जानते हो।'

'होगा क्या : उसका क्या है। किसी और को करके बैठ जायगी।'

स्नेह सहसा क्रोधित हो उठी। नारीत्व का अपमान उससे सहा नहीं गया, 'नहीं यह सब नहीं होगा, यह खंजर मुझे दो। क्या तुम अपने कारण सारी बसती को बिपदा में डाल दोगे।'

'विपदा में मैं डालूँगा। मैं तो उन्हें काल के हाथ से छुड़ाना चाहता हूँ। बस यह बोतल और यह खंजर ही काफी है।'

'राजू,' क्रोध से स्नेह चीख उठी।

राजू सन्न रह गया। पल भर में ही उसका नशा उतरने लगा।

'खंजर मुझे दो' स्नेह ने आज्ञा दी।

राजू उठ खड़ा हुआ। खंजर स्नेह के आगे फेंक कर चुप-चाप कोठरी के बाहर चला गया।

स्नेह ने फिर कहा, 'चलिये डाक्टर।'

बाहर आकर नीरेन पूछने लगा, 'राजू अब कहाँ जायगा।'

'यहीं कहीं पेड़ के नीचे पड़ा रहेगा। जब नशा उतरेगा तो चुपचाप घर चला आयेग।'

तब दोनों चुप हो गये। बहुत देर तक स्नेह ने पूछा, "अब आप क्या कहते हैं।'

'आज जो कुछ देखा सुना है, उसके विषय में मैं कुछ नहीं कहूँगा स्नेह। आज मैं जा रहा हूँ। बस केवल इतना जानता हूँ कि यदि मानवता का वह अभिषाप एक पल के लिये भी मनुष्य को छोड़ दे तो विश्व का बड़ा भारी कल्याण हो सकता है। आज जाते समय एक बात कहे जाता हूँ। तुम इन मजदूरों

के बीच से कभी मत निकलना। जितनी भलाई तुम इनकी कर सकती हो, विश्व में शायद कोई नहीं कर सकता। पूँजीवाद के चंगुल से इन्हें छुड़ाना ही मेरा एक मात्र लक्ष्य है, फिर भी मानव-जीवन में उससे बढ़कर कामना कोई है ही नहीं, ऐसा समझने की भूल मैंने कभी नहीं की। स्वाधीनता से ही स्वाधीनता का अन्त नहीं होता। धर्म-शान्ति-काव्य आदि उससे भी बड़े हैं। तुम्हारे अन्दर जो हृदय स्नेह, प्रेम, करुणा, माधुर्य से भरपूर हो उठा है, उसे तुम सदा इन्हीं लोगों के बीच बिखराती रहना। सच कहता हूँ, इनके लिये कल्याण का यह एक बड़ा विशाल मार्ग है। तुम्हारा परिचय ही तो देश का सच्चा परिचय है स्नेह। आखिर किसी न किसी दिन उन दुखी व्यक्तियों की स्वाधीनता-पराधीनता की समस्या का समाधान तो हो ही जायगा। उस दिन इनकी दुख-दारिद्य की कहानी को एक जनश्रुति से अधिक मूल्य नहीं मिलेगा। परन्तु तुम्हारी सेवा का मूल्य कौन आंक सकेगा। तुम्हीं तो देश की समस्त विच्छिन्न-विक्षिप्त धाराओं को एक सूत्र की तरह एकत्र गूंथ जाओगी। विश्वास से कहता हूँ यदि उस दिन तक जीवित रहा तो एक बार तुम्हारे सम्मुख श्रद्धा से सर झुकाना नहीं भूलूँगा।'

स्नेह ने नीरेन की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपनी ही बात कही, 'आप आज संध्या तक रुकने को कहते थे न! तो क्या उस समय तक भी ठहर नहीं सकियेगा।'

'नहीं, स्नेह, अभी मुझे बहुत दूर जाना है। किसी दिन अवसर मिला तो एक बार तुमसे फिर भेंट करूँगा। आज आशीर्वाद दिये जाता हूँ जिससे तुम अपने सेवा-व्रत में सफल हो सको, यही मेरी हार्दिक कामना है।'

स्नेह ने दोनों हाथ जोड़ दिये। नोरेन के हाथ भी क्षण भर को उठे और तभी वह आंखों से ओझल हो गया।

३०

निरन्तर उदासीनता जब मन-प्राण में हिचकोले भरने लगती है तो मनुष्य के अणु-परमाणुओं में एक गहन निराशा उत्पन्न होती है, एक शून्य का सा भाव उमड़ने लगता है, जिसकी पीड़ा असह हो जाती है।

आज बैठे-बैठे मृणाल अनजाने में ही उद्विग्न हो उठी, शून्य होकर आकाश की ओर निहारने लगी। अब तो असह हो रहा है, मन जला जा रहा है। उसने तो जीवन में सदा ही, दुख, दर्द, व्यथा सही है। परन्तु कभी नयनों से अश्रु नहीं निकला, कभी अधरों से आह नहीं निकली। पत्थर हो उसने बहुत सहा है। और आज, तो जीवन का आधार भी मिट गया। जिस प्रेरणा को लेकर वह केवल जीवित थी, अब तो वह भी नष्ट हो गई। जीवन में केवल रह गया शून्य जो असह हो रहा है, असह हो रहा है। दीप बुझा चाहता है, परन्तु उसे जीना है, कायर बनकर मर जाना नहीं है। मन ही मन मृणाल जाने जितने संकल्प-विकल्प करने लगीं। तभी आ पहुँचा हरीश मृदुल होकर पूँछने लगा, 'यहाँ ऐसे एकान्त में बैठकर क्या सोच रही थी मृणाल ?'

'जीवन व्यर्थ में बीता जा रहा है हरीश बाबू। जीने के

लिए कुछ न कुछ तो करना ही होगा, सोचती हूँ मुझे अब यहाँ से चला जाना चाहिए।'

हरीश अवाक् उसकी ओर देखता रह गया।

मृणाल कहने लगी, 'मन में पीड़ा समा रही है हरीश बाबू, दीप बुझा चाहता है। अपनी साधना की ओट में ही उसे जला रखना होगा। यहाँ अब अधिक रहना दूभर हो उठा है।'

'कहाँ जाओगी मृणाल।' खोया सा हरीश पूँछने लगा।

'बहुत दिन पहले एक स्कूल में पढ़ाती थी। फिर एक दिन आया जब अनजाने में ही उससे नाता तोड़ लिया! अब सोचती हूँ कि वहीं लौट जाऊँगी। हेड-मिस्ट्रेस मुझे बहुत प्यार करती हैं, वह फिर से मुझे स्थान दे देंगी।'

'क्या किसी भी भांति रुक नहीं सकती मृणाल।' हरीश दयाद्र हो उठा!

'नहीं हरीश बाबू अब असह हो रहा है, अब जाना होगा, अवश्य जाना होगा।'

हरीश मूक होकर शून्य हो गया।

मृणाल फिर कहने लगी, 'आज सोचती हूँ कि यदि उस दिन स्कूल छोड़कर आप लोगों के बीच न आ जाती तो कितना अच्छा होता। जीवन जैसा चल रहा था, उसे वैसा ही चलने देती। परन्तु जाने दो जो हुआ उसके लिये रोना-चिल्लाना क्या। आज अन्तिम बार एक प्रार्थना करती हूं, उसे स्वीकार कर लेना।'

'कहो मृणाल।'

'जो सदा छिपा रहा, जो अदृश्य है उसे अदृश्य ही रहने देना। मेरा अनुराग नीरेन बाबू पर प्रगट हो जाय ऐसा कभी प्रयास न करना। बोलो, कर सकोगे इतना।'

हरीश ने मौन स्वीकृति दे दी।

'एक बात और है' मृणाल कहने लगी, 'इतने बड़े संसार में केवल तुम्हीं तो मेरे अपने हो और एक हैं यह नीलिमा जीजी। कष्टों की अबेला में यदि कभी तुम्हें बुलाऊँगी तो आ सकोगे न।'

'अवश्य आ सकूँगा मृणाल।' दुनिया भर की व्यथा उसके स्वर में व्याप्त गई।

तभी आ गई नीलिमा, 'क्या आज ही चला जाना होगा मृणाल।'

'हाँ, जीजी, एक दिन बिन बुलाये ही तुम्हारे सम्मुख आ खड़ी हुई थी तो आज बिना आज्ञा लिए चला भी जाना चाहती हूँ। परन्तु फिर किसी भी दिन तुम्हारे चरणों पर आ पड़ूँगी जीजी! आशा है तुम मेरा भार पुनः सम्हाल सकोगी।'

नीलिमा कुछ भी उत्तर नहीं दे सकी और उसी दिन मृणाल चली गई।

३१

आठ मास बीत गये।

समय का चक्र चलता गया, चलता गया। पहिये घूमते रहे, धरती में धँसते रहे, अपनी स्मृति छोड़ते गये और आगे बढ़ते गये, बढ़ते गये।

हरीश अभी-अभी अस्त-व्यस्त सा अपने कमरे में आकर बैठा था। इन आठ मास में उसने मजदूरों को ही अपना

जीवन सौंप दिया है। तन-मन की सुधि भूलकर वह उनके उद्धार का प्रयत्न कर रहा है। वह भूल गया है कि वह भी मनुष्य है। वह भूल गया है कि उसकी भी इच्छायें, आकांक्षायें हैं।

तभी सामने आ खड़ा हुआ नीरेन! हरीश आश्चर्यमयी प्रसन्नता से भर उठा, 'अरे तुम हो भैया, आज अचानक बिना सूचना दिये ही यहाँ कैसे आ पहुँचे।'

'ठहरो हरि, सब बताऊँगा, पहले माँ की चरण-धूलि ले आऊँ।'

हरीश के हृदय से एक गहरी उसाँस निकल गई। दयार्द्र होकर कहने लगा, 'सब जा चुका है भैया, माँ अब इस संसार में नहीं हैं।'

आश्चर्य से उसे देखता नीरेन बैठा रह गया। हृदय मानों फट पड़ेगा। आँसू मानों झलक पड़ेंगे। कैसी व्यथा है, कैसी चिर-व्यापी वेदना है।

'अन्तिम बार माँ की पग-धूलि भी न ले सका हरि यह क्षोभ मन से कभी नहीं निकलेगा।' नीरेन उदास हो गया।

'माँ को अन्त तक उस बात का आश्चर्य होता रहा भैया।' हरीश कहने लगा, 'तुम इतना स्नेह, इतना आदर जो माँ के लिये अपने हृदय में समेटे रहे, उनकी तनिक सी भी पुकार पर ही जो तुम कठिन से कठिन कार्य छोड़कर भी उनके चरणों में दौड़ आये, तो क्या वह क्षणभर में ही कच्ची भीति की भाँति ढह गया। इतना मान, इतना आदर क्या केवल निरर्थक ही रहा।। अन्तिम बेला में उनकी चरण-धूलि लेने को भी तुम एक बार न आ सके।'

तनिक देर बाद हरीश फिर कहने लगा, 'माँ ने ऊपर से यह सब कहा अतएव भैया, परन्तु मन में तुम्हारे स्नेह

की कभी उपेक्षा न कर सकी। तुम्हारा विश्वास कभी उनके हृदय में निर्विकार होकर नहीं रह सका। इसीसे अन्तिम बार तनिकसा मुस्कराकर वह तुम्हें आशीर्वाद देतीं गईं। माँ ने कहा था भैया, मुझे विश्वास है हरि, मेरा नीरू मुझे भूलेगा नहीं। आज वह मुझसे दूर है,इसीसे तो मैं आज इतनी प्रसन्न हूँ। नहीं तो हरि, भला उसे देखकर उन भारी भारी अश्रुओं का भार कहीं अपनी पलकों पर सम्भाल सकती। फिर मुस्करा कर कहने लगी, मेरे नीरू से कहना युग युग से। एक आशा मन में सजों रक्खी थी, जीवन में कभी वह पूरी न हो सकी। आज भी उसे मन में ही समेटे लिये जा रही हूँ।'

नीरेन आतुर हो उठा, 'मैं जानता हूँ हरि, सब जानता हूँ। एक दिन उन्होंने मन ही मन नीलिमा का सम्बन्ध मेरे साथ जोड़ देना चाहा था। मन ही मन उसे अपनी वधु भी स्वीकार कर लिया था। परन्तु उसकी साध कभी पूर्ण न हो सकी, कभी हो भी न सकेगी हरि।'

हरीश बहुत देर तक मूक होकर नीरेन की ओर देखता रहा। फिर बोला, 'इन आठ महीनों में जीवन कैसे बीता भैया!'

'एक दिन सब बतलाऊँगा हरि, मानवता का नग्न-नृत्य विलास का वैभव पूँजीवाद की धाँधले बाजी, सब तुम्हारे सामने स्पष्ट रूप से खोल कर रख दूँगा। परन्तु आज मैं जा रहा हूँ, यहीं पास के ग्राम में रोग फैला है, लोग मर रहे हैं, गाँव छोड़कर भाग रहे हैं। उनके पास दवा नहीं है, जीवन के साधन नहीं हैं। आज उन्हीं के बीच दौड़ जाना चाहता हूँ। एक डाक्टर हैं, कल वह भी वहां पहुँच जायँगे।'

हरीश उदास हो गया, 'क्या इसी समय चले जाओगे भैया।'

'हाँ, इसी समय।'

'एक बार नीलिमा से भी नहीं मिल सकोगे।'

'नहीं हरी, नीलिमा मिले तो एक बार मेरी ओर से क्षमा माँग लेना। कहना कि यदि अवसर मिला तो जीवन में फिर किसी दिन उन्हीं लोगों के बीच आकर रहने लगूँगा।'

हरीश मौन होकर सुनता रहा।

नीरेन पूँछने लगा, 'वह केशव माधव, मृणाल तो प्रसन्न हैं हरी।'

'सब अच्छे हैं भैया, मृणाल चली गई है। फिर स्कूल में उन्हें स्थान मिल गया है!'

आज जब नीरेन जाने लगा तो हरीश ने माथा उसके चरणों पर रख दिया। नीरेन चौंक कर दो पग पीछे हट गया, 'यह क्या करते हो हरि।'

'यह मेरा अधिकार है भैया, इससे मुझे वंचित मत करो।'

तभी दयाद्र हृदय लिये नीरेन चला गया।

३२

'नीरेन भैया के पास चलोगी नीलिमा।' हरीश पूँछने लगा।

'नीरेन बाबू के पास!'

'हाँ' अभी माधव आता है, कहता था भैया को रोग हो गया है, आज अन्तिम बार तुम्हें देखना चाहते हैं।'

आतुर होकर निलिमा फट पड़ी, 'चलिए हरीश बाबू अभी, इसी समय।

थोड़ी देर में ही दोनों कार में बैठकर गाँव की ओर चल दिये।

गाँव के बीचोबीच एक छोटी सी पहाड़ी है। उसी तलहटी में चारों ओर छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बनाकर लोग रहने लगे हैं। छोटा सा गाँव थोड़े से खेत, गाय, बैल, हलें, बस यही है उसकी पूँजी। पहाड़ी पर आज सूखी मिट्टी ने आधिपत्य जमा लिया है। उसकी हरी मखमल सी घास जलकर राख हो गई है। लगता है मानों मृत्यु शय्या पर पड़ी अंतिम स्वासें ले रही हो।

पहाड़ी के ऊँचे शिखर पर एक छोटा सा मन्दिर है। पहले निशा को आगमन होते ही आराधना के हेतु आये हुए भक्तों की जय जयकार और घँटियो की ध्वनि यहाँ गूँज उठती थी। द्वार पर दीप जल जाते थे। पुष्पों का सौरभ भरे मन्द-मन्द पवन बहने लगती थी। परन्तु आज लगता है मानों सब शून्य हो गया है, मृत हो गया है। क्रन्दनों सा, चीत्कारों सा उसाँस भरे पवन धीमे-धीमे रुदन कर रहा है। समस्त ग्राम सूना हो गया है। जीवन का चिन्ह दिखाई नहीं देता, केवल कहीं कोई कुत्ता आतुर होकर रो उठता है।

पहाड़ी की तलहटी में एक छोटी सी झोंपड़ी है, उसी में अर्ध-मूर्छित अवस्था में पड़ा है नीरेन। शरीर सूखकर काँटा हो गया है आँखें गढ़े में धँस गई हैं मानों रक्त नहीं है, जीवन नहीं है।

विक्षिप्त सी नीलिमा एक बार उसे देखकर अवाक् रह गई! एक बार मन में जाने कैसी यातनायें काँप उठीं। आतुर होकर वह नीरेन के पांव पर गिर पड़ी, 'यह कैसी दशा है आपकी नीरेन बाबू।'

स्पर्श पाकर नीरेन ने आँखें खोल दीं। मुस्कराकर कहने लगा, 'तुम आगई नीलिमा, मैं जानता था एकबार तुम अवश्य आओगी। तुम भी हो हरि, आओ यहाँ बैठो मेरे पास।'

दोनों जाकर नीरेन के पास बैठ गये ।

नीरेन कहने लगा, 'जीवन की यह गाड़ी धँसी जा रही है हरि, पहिये दलदल में समाये जा रहे हैं । प्रयत्न करने पर भी जो निकल नहीं सकेंगे । गाड़ी आगे बढ़ नहीं सकेगी !'

हरीश आतुर हो उठा, 'ऐसा न कहो भैया, जीवन-पथ पर चलते चलते एक दिन अनजाने में ही तुम्हे पा गया था, वह मेरा सौभाग्य था परन्तु आज इस अवेला में तुम्हें छोड़ देना कभी भी सहन न हो सकेगा ।'

नीरेन ने उत्तर नहीं दिया । वह नीलिमा की ओर देख रहा था । उसी ओर देखता हुआ कहने लगा, 'आज अनायास ही मन में एक बात उठ रही है नीलिमा ।'

नीलिमा मूक उसकी ओर देखती रही ! वह फिर बोला, 'मन ने तो कभी स्वीकार नहीं किया परन्तु आज लगता है मानों तुम जीवन में कभी मुझसे बिलग नहीं हुई । सदा मेरे साथ साथ चलती रही । केवल तुम्हीं से प्रेरणा पाकर मैं दृढ़ हो सका । कैसी विचित्र बात है, जीवन में कभी भी जिसे जान नहीं पाया आज इस मृत्यु शय्या पर अनजाने में ही उसे समझ गया हूँ ।'

नीलिमा मौन बैठी रही ।

नीरेन फिर कहने लगा, 'मैने जीवन में जो भी किया है नीलिमा उससे मन नहीं भरा ! सदा ही असन्तुष्ट रह जाना पड़ा । आज भी असन्तुष्ट होकर मर रहा हूँ । इसीसे एकबार मनपर सिमट आया है । उसे तुम्हारे उपर छोड़ जाना चाहता हूँ, बोलो, सम्भाल सकोगी उसे ।'

कातरसी नीलिमा कह उठी 'सम्भाल सकूँगी नीरेन बाबू, आपके प्यार का विश्वास लेकर सब कुछ कर सकूंगी ।'

नीरेन कहता गया 'नीलिमा को आज मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ

हरि, उनके साथ मिल कर तुम अवश्य अपने ध्येय पर पहुँच सकोगे। मजदूरों के बीच रहकर तुम उन्हें कुछ स्वाभिमान सिखा सकोगे। ममता-मयी आंचल से उनके चीत्कार ढक दोगे। उनके निरन्तर बहते हुये आसुओं को पोंछ कर सहानुभूति के दो शब्द कह सकोगे। और सिखा सकोगे उन्हें अपने अधिकारों के लिये आवाज उठाना। अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करना। यही है मानव-धर्म। इसी के लिये तुम्हें लड़ना है। मानव की गति केवल यही निश्चल नहीं बनी रहेगी। किसान-मजदूरों का जमाना भी किसी दिन आयेगा, तब देश के कल्याण, अकल्याण का भार उन्हीं के हाथों सौंप देना पड़ेगा। उस दिन स्वच्छ, शान्त मन से समस्त उत्तरदायित्व उन्हीं पर छोड़ कर तुम लोग छुट्टी ले लेना। परन्तु आज उनके बीच से तुम कभी मत हटना। मुझे विश्वास है इस समय आत्म-बलिदान का गुरु-भार वे नहीं सह सकते।'

नीरेन कहता गया, 'एक बात आज और कहूँगा, तुम उनका हित करना अवश्य, परन्तु दूसरों पर कलंक मढ़कर या एक के विरुद्ध दूसरे को उत्तेजित करके कभी मत करना। विश्व के सम्मुख उन्हें हास्यस्पद करके मत करना। इससे कभी उनका भला नहीं हो सकेगा। तुम यह कभी मत समझना कि दुनिया भर में फैले हुये पूँजीवाद के विरुद्ध क्रांति का प्रयत्न करना निरा पागलपन है।'

नीलिमा सुनती रही चुपचाप।

नीरेन कहता गया, 'युग-युग में मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार सत्य को नया रूप धारण करके आना पड़ा है। यह विश्वास भ्रान्त है कि अतीत में जो सत्य था उसको वर्तमान में भी सत्य स्वीकार करना ही पड़ेगा। मानव की आवश्यकता पर नये सत्य की सृष्टि करना ही तुम्हारा एक

मात्र धर्म है। जो चले गये हैं नीलिमा, उनके लिये आँसू नहीं बहाना चाहिये, जो रह गये हैं बस केवल उन्हीं के लिये अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। नारी एक महान शक्ति है, पुरुष क्रान्तिकारी है! आगे बढ़ना ही उसका स्वभाव है, परन्तु उसकी प्रगति को स्थिरता देती है केवल नारी ही। इसी से कहता हूँ तुम सदा अपनी ममता से निर्बल प्राणी के मन को बल की प्रेरणा देती रहना नीलिमा।

नीरेन कहता गया, 'वहाँ देखो, वह प्रकाशमयी किरण-पुंज संकेत करके तुम्हें बुला रही है। वहीं विजय पताका लिये राह देख रही है। वही है तुम्हारा ध्येय, वही है वह संसार, तुम्हारी सुखों का संसार जहां मानव मानव की भांति जी सकता है जो शोषण, अत्याचारों और दमन से बहुत दूर है। जहां प्राणी मात्र को वास्तव में जीने के अधिकार मिले हैं। बस एक बार लड़-झगड़ कर तुम्हें वहीं तक पहुँच जाना है।' कहते कहते नीरेन का स्वर धीमा पड़ने लगा।

पल भर में ही उसके प्राण-पखेरू उड़ चले। और नीलिमा बैठी देखती रही चुपचाप।

श्मशान में नीरेन की देह जल रही थी, उसकी समस्त आशायें व अरमान समेटे नीलिमा देखती रही, चिता जलती रही।

बहुत देर बाद हरीश कहने लगा, 'चलो नीलिमा सब समाप्त हो चुका है। भैया जिस मिट्टी से बने थे उसी में जा मिले हैं! यही तो है जीवन का मोह।' उसका स्वर भारी था।

नीलिमा ने मानों सुना ही नहीं। हरीश फिर कहने लगा, 'बहुत थक गई हो नीलिमा, मेरा हाथ पकड़ लो।'

'मैं चल सकूँगी हरि बाबू।' नीलिमा उठ खड़ी हुई। और दूर क्षितिज के पास दो काली काली रेखायें अंधियारे के घने झुरमुट में लीन हो गईं।

॥ समाप्त ॥